ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

फरवरी २०२० Date of Printing = 05-02-20
प्रकाशन दिनांक= 05-02-20

वर्ष ४६ : अङ्क 4
दयानन्दाब्द : १९५
विक्रम-संवत् : माघ-फाल्गुन २०७६
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२०

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओमप्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति १५.०० रु०
वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- ऐ मेरे देश के वासियों २
- वेदोपदेश ३
- क्षमा और राजनीति ४
- सामान्यतोदृष्ट अनुमान के.... ७
- अंग्रेजो और मुसलमानों के सम्बन्ध.... १०
- ईश्वर सगुण-निर्गुण : साधक की.... १२
- सज्जनों से द्वेष और दुष्ट आचरण.... १५
- आर्यसमाज नया बांस के इतिहास...... १९
- दलितोद्धार की आड़ में (३) २२

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

ऐ मेरे देश के वासियो सब सुनो

(रोहित आर्य, मो० ८९५८६८२४८९)

ऐ मेरे देश के वासियो सब सुनो,
तुम शहीदों के गीतों को गाना सदा।
जान वो देश पर हैं लुटा गये,
इसलिए शीश उनको झुकाना सदा॥
ऐ मेरे देश के....

देश के ही लिए मर गए और जिये,
देशहित यातनाओं के प्याले पिये।
देश के लिए ही सबने ओढ़े कफन,
आँसू उनके लिए तुम बहाना सदा॥१॥
ऐ मेरे देश के....

क्रान्ति पथ पै सुनो थीं लड़ी नारियाँ,
पैदा करती रहीं रोज चिंगारियाँ।
अपने बेटों व पतियों की दे दी बलि,
उसके साहस पै मस्तक झुकाना सदा॥२॥
ऐ मेरे देश के....

छोटे बच्चे लड़े, वृद्ध जन भी अड़े,
सारे गोरों को सम्मुख हुए थे खड़े।
इंकलाबी उठाये जवानों ने स्वर,
मातरम् वन्दे तुम गाते जाना॥३॥
ऐ मेरे देश के....

क्रान्ति की देश में ऐसी आँधी चली,
क्रूर गोरों में मच थी गई खलबली।
देख आक्रोश वीरों का गोरे भागे,
उनका रहने न पाया ठिकाना सदा॥४॥
ऐ मेरे देश के....

उनको कोडों से अक्सर था मारा गया,
पीट कर खाल को था उतारा गया।
क्रान्तिपथ से न बिल्कुल वो पीछे हटे,
उनकी गाथा को तुम पढ़ते जाना सदा॥५॥
ऐ मेरे देश के....

काले पानी की सहते रहे यातना,
माफी माँगी नहीं न करी याचना।
देशहित कोल्हू हरदम चलाते रहे,
उनके गीतों को श्रद्धा से गाना सदा॥६॥
ऐ मेरे देश के....

गोलियाँ मारकर खूँ बहाया गया,
तोप से बाँधकर के उड़ाया गया।
कोई जिन्दा जलाया गया आग में,
उनके लोहू के ऋण को चुकाना सदा॥७॥
ऐ मेरे देश के....

क्रूर गोरों बिल्कुल भी घबराये न,
गोरे उनको तो भयभीत कर पाये न।
फन्दे खुद फाँसियों के रहे चूमते,
उनके पथ पै सभी बढ़ते जाना सदा॥८॥
ऐ मेरे देश के....

उनके गीतों को हम भी सदा गायेंगे,
गाथा उनकी सदा यूँ ही दोहरायेंगे।
वीर बलिदानियों की हमेशा हो जय,
गीत **'रोहित'** के संग गाते जाना सदा॥९॥
ऐ मेरे देश के....

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। – महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश- ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (यजु० ३६/३)

शब्दार्थः- हे **भूः**=सत्यस्वरूप! प्राण! सब जगत् के जीवनाधार! प्राण से भी प्रिय! स्वयम्भू! **भुवः**=सर्वज्ञ अपान! सब दुःखों से रहित! जीवों के दुःख दूर करनेवाले! **स्वः**=आनन्द! व्यान! नानाविध जगत् में व्यापक होकर सबको धारण करनेवाले, सबके आनन्दसाधन एवं आनन्द देनेवाले परमेश्वर! **सवितुः**=सर्वजगत् के उत्पादक, सर्वैश्वर्यप्रदाता, सकल संसार के शासक, सब शुभ प्रेरणा देनेवाले **देवस्य**=सर्व-सुख-प्रदाता, कमनीय, दिव्यगुणयुक्त आप प्रभु **वरेण्यम्**=स्वीकार करने योग्य अतिश्रेष्ठ **तत्**=उस जगत्प्रसिद्ध **भर्गः**=शुद्धस्वरूप, पवित्रकारक, चैतन्यमय, पापनाशक तेज को **धीमहि**=हम धारण करें तथा ध्यान करें, **यः**=जो **नः**=हमारी **धियः**=बुद्धियों को **प्रचोदयात्**=शुभ प्रेरणा करे अर्थात् कर्मों से हटाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

व्याख्याः- हे परमेश्वर! सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप! हे नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव! हे अज! निरञ्जन! निर्विकार! हे सर्वान्तर्यामिन्! हे सर्वाधार जगत्पते! सकल जगत् के उत्पादक! हे अनादे! विश्वम्भर! सर्वव्यापिन्! हे करुणावरुणालय! हे निराकार! सर्वशक्तिमान्! न्यायकारिन्! समस्त संसार की सत्ता के आदिमूल! चेतनों के चेतन! सर्वज्ञ! आनन्दघन भगवन्! क्लेशापरामृष्ट! कमनीय! प्रभो! जहाँ आपका जाज्वल्यमान तेज पापियों को रुलाता है, वहाँ आपके भक्तों, अराधकों, उपासकों के लिए वह आनन्दप्रदाता है, उनके लिए वही एक प्राप्त करने की वस्तु है, उनके ज्ञान-विज्ञान, धारणा-ध्यान की वृद्धि कर उनके सब पाप-सन्ताप नाश कर देता है। परमाराध्य परमगुरो! तू सदा पवित्र और उन्नतिकारक प्रेरणा किया करता है, हम तेरी शरण में आये हैं, तू हमें भी पवित्र प्रेरणा दे। तू ही सबको सुमार्ग दिखाता है, हमें भी सुमार्ग दिखला। हमें ऐसी प्रेरणा कर कि जिससे हमें कुमार्ग से हटकर सुमार्ग पर आरूढ़ हों, कुकाम से निवृत्त होकर सुकाम में प्रवृत्त हों, कुव्यसनों से विरक्त हो सत्कार्यों में संरक्त हों, सांसारिक कामनाओं को चित्त से हटाकर तेरे तेज को धारण करें, उसका ध्यान करें, ताकि हमारे सारे पाप-ताप नष्ट हो जाएँ, मल धुल जाएँ, विक्षेप का संक्षेप होते-होते सर्वथा प्रक्षेप हो जाए।

हे सकल-शुभ-विधातः! करुणानिधान! कृपालो! दयालो! हम पर ऐसी कृपा और अनुग्रह कीजिए कि हमें सदा तेरी प्रेरणा मिलती रहे, ताकि तेरी उस प्रेरणा से प्रेरित हुए हम सदा तेरी आज्ञा का पालन करते हुए तेरे वर-पुत्र बन सकें। प्रभो! भूयोभूयः तुझसे यही प्रार्थना है।

साभार- स्वाध्याय सन्दोह

❑❑

क्षमा और राजनीति

(धर्मपाल आर्य)

१८ जनवरी को वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती इन्दिरा जयसिंह ने एक बयान दिया, जिसमें उन्होंने निर्भया की माँ से अपील की कि उन (आशा देवी) को सोनिया गाँधी का अनुसरण करते हुए फाँसी की सजा पाए चारों गुनाहगारों को क्षमा कर देना चाहिए। उनका कहना था कि यद्यपि निर्भया प्रकरण में मैं पीड़िता की माँ के साथ हूँ और मेरी पूरी सहानुभूति उनके (पीड़ित परिवार के) साथ है किन्तु मैं मृत्युदण्ड के खिलाफ हूँ। निर्भया की माँ को चाहिए कि जैसे सोनिया गाँधी ने अपने पति की हत्या में शामिल नलिनी को क्षमादान दिया है वैसे ही वो निर्भया के साथ दरिंदगी कर उसकी निर्दयता के साथ हत्या करने वालों को क्षमादान कर दे।

इसके बाद निर्भया की माँ की प्रतिक्रिया आयी जिसमें उन्होंने कहा-"इन्दिरा जयसिंह जैसे लोग ही न्यायिक प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिए जिम्मेदार हैं। अपराधियों को सजा से बचाने का कार्य करते हैं। उन्होंने इन्दिरा से पूछा कि उनकी अपनी बेटी के गुनाहगारों के साथ क्या उनकी यही प्रतिक्रिया होती? यदि भगवान् भी आकर क्षमा के लिए कहें तो भी उनके लिए कोई माफी नहीं है।" इन्दिरा जयसिंह का बयान, उन तथाकथित उदारवादियों की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है जो क्रूरतम से क्रूरतम अपराध करने वालों के लिए भी क्षमादान का विकल्प हमेशा खुला रखते हैं। भविष्य में इन्दिरा जयसिंह के उपरोक्त बयान को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष राजनीतिक समर्थन मिल जाए तो कोई आश्चर्य नहीं होगा, क्योंकि निर्भया के गुनाहगार जिस प्रकार पैंतरे चल रहे हैं, उससे जहाँ फाँसी की सजा को तारीखें मिल रही हैं, वहीं इस प्रकरण को लेकर राजनीतिक दलों में भी एक-दूसरे के खिलाफ राजनीतिक विरोध की प्रतिक्रियाएँ सामने आ रही हैं।

मुझे यह लिखने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि देश में चाहे कितना ही संवेदनशील विषय हो वो अधिक नहीं तो थोड़ा और प्रत्यक्ष नहीं तो अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति के दुष्प्रभाव से अवश्य दुष्प्रभावित होता है। निर्भया के साथ जो बर्बरता हुई और उपर्युक्त प्रकरण न केवल राष्ट्रीय स्तर पर अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी जिस प्रकार चर्चा का विषय बना रहा तथा पूरे देश में उपर्युक्त काण्ड के खिलाफ जिस प्रकार व्यापक विरोध प्रदर्शन भी हुए। फिर भी उन्होंने यदि बलात्कारियों और हत्यारों के लिए क्षमा की वकालत की है तो इसमें किसका हित है! समाज का, राष्ट्र का, पीड़ित परिवार का अथवा उन गुनाहगारों का जिन्होंने बिना किसी भय के अपने अपराध को निर्दयता से अंजाम दिया। मैं समझता हूँ कि इस प्रकार की क्षमा किसी के भी हित में नही है।

हैदराबाद के दुष्कर्मियों व हत्यारों को जब पुलिस मुठभेड़ में मार गिराया था तो देश में जहाँ अधिकतर पुलिस कार्यवाही की प्रशंसा कर रहे थे तभी तथाकथित मानवाधिकार सोते से जगा और पुलिस कार्यवाही पर प्रश्न चिह्न लगा दिया तथा पुलिस मुठभेड़ को गलत सिद्ध करने की कवायद शुरू हो गई। सन्तोष की बात यह रही कि हैदराबाद दुष्कर्मियों और हत्यारों के प्रकरण में राजनीति अधिक प्रभावी नहीं रही। मुझे इस बात की आशंका है कि इन्दिरा जी की क्षमा की पैरवी कहीं निर्भया प्रकरण में राजनीतिक हस्तक्षेप का रास्ता तो साफ नहीं कर रही। दुर्भाग्यवश यदि ऐसा हुआ तो भारतीय न्याय व्यवस्था की यह सबसे बड़ी त्रासदी होगी। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है कि एक क्रूर अपराधी, देशद्रोही, बलात्कारी और हत्यारा भी दया और सहानुभूति का पात्र रहता है और पीड़ित पक्ष को उपेक्षा का दंश झेलना पड़ता है। अपराधियों के प्रति सहानुभूति और दया का भाव रखने वालों को यह स्मरण क्यों नहीं रहता कि अन्यायी, अपराधी, बलात्कारी और हत्यारों के प्रति दया और सहानुभूति रखना और उनके लिए क्षमा की पैरवी करना सीधे-सीधे अन्याय, अपराध, बलात्कार और

हत्या को प्रोत्साहित करना है जो कि पाप और अधर्म की कोटि में आता है।

जो लोग कहते हैं कि अन्यायी से नहीं अन्याय से घृणा करो, जो यह कहते हैं कि अपराधी से नहीं अपराध से घृणा करो और जो यह कहते हैं कि पापी से नहीं पाप से घृणा करो; तो मैं कहना चाहता हूं कि उपर्युक्त बातें जितनी कहने, सुनने में अच्छी लगती हैं; व्यावहारिक और वास्तविकता के धरातल पर उतनी ही अव्यवहारिक हैं। क्योंकि पाप, अपराध, अन्याय, हत्या अथवा बलात्कार की बिना पापी के बिना अपराधी के, बिना अन्यायी के, बिना हत्यारे के और बिना बलात्कारी के अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। इनकी अभिव्यक्ति के जो माध्यम हैं उनसे घृणा करना और उनको दण्डित करना ही न्याय की रक्षा करना है और न्याय की रक्षा करना ही समाज की रक्षा करना है। दया, सहानुभूति और क्षमा की अपनी मर्यादा और सीमा है। परन्तु इस देश में किसी के लिए भी क्षमा की वकालत करना फैशन सा बन गया है।

अहिंसा और मानवता का तथाकथित नकाब ओढ़कर बेशर्मी के साथ जो मानवता के हत्यारों और शत्रुओं के लिए दया की भीख का राग अलापते हैं, ऐसे तत्त्वों को किसकी संज्ञा दी जाए? इसका निर्णय मैं अपने प्रबुद्ध पाठकों पर छोड़ता हूँ। उपर्युक्त सोच कभी भी समाज, को, राष्ट्र को और परिवार को न्याय के, धर्म के, मानवता के, सामाजिक समरसता के रास्ते पर आगे नहीं बढ़ने देगी। इस प्रकार के अपराधों की सजा का मनुस्मृति में स्पष्ट प्रावधान है। मनु महाराज लिखते हैं–

ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम्।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिक नरम्॥
साहसे वर्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति॥
न मित्रकरणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात्।
समुत्सृजेत्साहसिकान् सर्वभूतभयावहान्॥
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्योदेवाविचारयन्॥

अर्थात् नष्ट न होने वाले तथा कम न होने वाले यश को चाहने वाले राजा को बलात्कार जैसे दुष्कृत्य करने वाले को एक क्षण भी सहन नहीं करना चाहिए। बलात्कार जैसे दुष्कृत्यों में संलिप्तों की राजा यदि उपेक्षा करता है तो वह प्रजा में जहां विद्वेष का शिकार होता है वहीं उसका विनाश भी शीघ्र होता है। मित्रता के कारण अथवा प्रचुर धन प्राप्ति के लालच में भी राजा बलात्कारियों अथवा दुष्टाचरण के कारण प्रजा में भय फैलाने वाले तत्त्वों को कभी भी कठोरतम दण्ड दिए बिना न छोड़े। यदि आततायी गुरु हो, यदि आततायी बालक हो, यदि आततायी बुजुर्ग हो, यदि आततायी ब्राह्मण और यदि आततायी शास्त्रों का ज्ञाता हो तो भी राजा को इन्हें कठोर से कठोर दण्ड देना चाहिए। आततायी को, पापी को और बलात्कारी को मृत्युदण्ड देने में कोई पाप नहीं लगता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार और यथायोग्य व्यवहार करने की प्रेरणा देते हैं। पारिवारिक जीवन में, आध्यात्मिक जीवन में और धार्मिक जीवन में व्यवहार प्रीतिपूर्वक और धर्मानुसार आवश्यक है किन्तु सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में प्रीति और धर्मपूर्वक किया गया व्यवहार सफल ही हो, आवश्यक नहीं किन्तु व्यवहार यदि यथायोग्य है तो आपका राजधर्म और समाज धर्म सफल होगा ही, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। निर्भया के मामले में एकदम विपरीत आचरण हो रहा है। जो दण्ड के अधिकारी थे उनमें से एक तो नाबालिग की आड़ लेकर सुरक्षित निकल गया। बाकी जो बच गए उनके प्रति इन्दिरा जयसिंह के मन में ऐसी सहानुभूति जगी कि उन्होंने निर्भया की माँ (आशा देवी) को सोनिया गाँधी का अनुकरण करके फाँसी की सजा पाए चारों दरिन्दों को क्षमा करने का बड़ा भावनात्मक उपदेश दे डाला लेकिन उन्होंने निर्भया की माँ के उस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया– "यदि मेरी बेटी की जगह उनकी बेटी होती तो भी क्या उनका यही रवैया रहता?"

इन्दिरा जयसिंह के तथाकथित क्षमादान की दुहाई के पीछे कहीं राजनीति इस प्रकरण में दखल देने के लिए रास्ता तो नहीं तलाश रही? यदि दुर्भाग्यवश ऐसा हुआ तो हमारी न्याय- व्यवस्था की इससे बड़ी और कोई त्रासदी नहीं हो सकती? महर्षि मनु हों चाहे आचार्य चाणक्य हों अथवा महर्षि दयानन्द सरस्वती सबका एक ही मन्तव्य है

कि अपराधी को उसके अपराध के अनुसार शीघ्रातिशीघ्र अवश्य दण्ड मिलना चाहिए; यही न्याय का तकाजा है।

मैं समझता हूँ कि निर्भया के चारों अपराधी हमारी न्यायिक प्रणाली से आँख मिचौनी खेलकर उसका मजाक उड़ा रहे हैं। इसका अनुभव कहीं न कहीं केन्द्र सरकार को भी हुआ; परिणामत: सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर कर उच्चतम न्यायालय से अनुरोध किया कि फाँसी की सजा पाए दोषियों की दयायाचिका खारिज होने के बाद सात दिन के भीतर मृत्यु-आदेश (डेथ वारंट) जारी कर दिया जाए और उसके बाद सात दिन के भीतर उन्हें फाँसी दे दी जाए। सरकार ने शत्रुघ्न चौहान प्रकरण में माननीय न्यायालय की उस टिप्पणी को भी उद्धृत किया जिसके अनुसार "फाँसी की सजा पाए दोषी का मामला लटका रहना उस पर मानसिक अत्याचार है।

माननीय उच्चतम न्यायालय का जो भी फैसला होगा वह न केवल निर्भया के फैसले पर प्रभाव डालेगा अपितु जितने भी दुष्कर्म के अपराध में मौत की सजा के मामले हैं, उन सब तथा भविष्य में भी जो तत्सम्बन्धित फैसले होंगे उन सब पर भी दूरगामी प्रभाव डालेगा। केन्द्र सरकार का उच्चतम न्यायालय में जाना, उपर्युक्त प्रकरण में उचित दिशानिर्देश तय करने का अनुरोध करना निश्चित ही इस विषय में सरकार की गम्भीरता को दर्शाता है, परन्तु यह कदम बहुत पहले उठाया जाना चाहिए था। उच्चतम न्यायालय ने सरकार की उपर्युक्त याचिका पर टिप्पणी करते हुए कहा कि फाँसी की सजा में सुनवाई का दौर अन्तहीन नहीं होना चाहिए, उसका सुनवाई का अन्तिम होना बेहद जरूरी है। इसके बाद उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि "दोषी को यह नहीं समझना चाहिए कि वह (दोषी) इस पर कभी भी सवाल उठा सकता है। मृत्यु दण्ड में अन्तहीन मुकदमेबाजी की इजाजत नहीं दी सकती। उच्चतम न्यायालय की टिप्पणी से निर्भया मामले में मौत की सजा पाए दोषियों की फाँसी की सजा के क्रियान्वयन की सम्भावना को बल मिला है।

देशद्रोहियों, अपराधियों और बलात्कारियों के प्रति उमड़ने वाली सहानुभूति और क्षमादान की वकालत समाज में शान्ति नहीं अपितु अशान्ति, धर्म नहीं अपितु अधर्म, सत्य नहीं असत्य, सद्भावना नहीं अपितु दुर्भावना, न्याय नहीं अपितु अन्याय, मानवता नहीं दानवता, सज्जनता नहीं अपितु असज्जनता, सबलता नहीं अपितु निर्बलता, आशा नहीं अपितु निराशा व हताशा, न्यायिक प्रणाली में विश्वास की नहीं अपितु अविश्वास की, न्यायिक दृढ़ता की नहीं अपितु न्यायिक शिथिलता की, धीरता की नहीं अपितु अधीरता की, संवेदनशीलता की नहीं अपितु संवेदनहीनता की और न्यायिक प्रक्रिया के सम्मान की नहीं अपितु उसके अपमान ही नहीं घोर अपमान की संवाहक है।

पैशाचिक प्रवृत्ति वालों के प्रति सहानुभूति व क्षमादान की गुहार उनकी दया को नहीं अपितु दया के नाम पर उनके पाखण्ड को ही दर्शाता है और समय-समय पर तथाकथित मानवता के झण्डाबरदार इस प्रकार की अपनी दया भावना का प्रदर्शन करते रहते हैं। रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने लिखा है:-

अनुज वधु भगिनी सुतनारी।
सुन सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहिं कुदृष्टि विलोकइ सोई।
ताहे बधैं कछु पाप न होई॥

अर्थात् अनुज की वधू (पत्नी) बहिन, पुत्र-पत्नी और कन्या इनको जो भी कुदृष्टि से अर्थात् बुरी नजर से देखता है इनको मारने में कोई पाप नहीं होता है। परन्तु ये यदि अपने अपराधानुसार यथोचित दण्ड नहीं पाते हैं या छोड़ दिए जाते हैं तो पाप अवश्य होगा। निर्भया को सच्ची श्रद्धाञ्जलि तभी होगी जब उसके साथ बर्बरता कर उसकी हत्या करने वाले मौत की सजा पाए चारों अपराधी फाँसी के फंदे पर लटक कर अपने अंजाम तक पहुँचेंगे। इन्दिरा जयसिंह ! दया दीनों पर की जाती है, दरिन्दों पर नहीं। दया दुर्बल पर की जाती है, दैत्यों पर नहीं। दैत्यों और दरिन्दों पर दया की वकालत करके दया की पवित्रता और व्यापकता को तहस-नहस करने का प्रयास न किया जाए तो अधिक अच्छा होगा।

❑❑

सामान्यतोदृष्ट अनुमान के सांख्यदर्शन से कुछ उदाहरण

(उत्तरा नेरूर्कर, मो. ०९८४५०५८३१०)

सामान्यतोदृष्ट अनुमान सम्यक्तया समझा नहीं जाता है। अनुमान के अन्य भेदों - पूर्ववत् और शेषवत् - का आधार कार्य-कारण सम्बन्ध है। इसलिए उनको समझने में विशेष कष्ट नहीं होता। परन्तु सामान्यतोदृष्ट में वह सम्बन्ध ज्ञात नहीं होता। इस कारण से इसके प्रयोग में त्रुटि हो जाती है। सांख्यदर्शन में सभी प्रकार के प्रमाणों से अनेक उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं।, इसलिए सामान्यतोदृष्ट के भी यहाँ सुन्दर उदाहरण दिखाई पड़ते हैं। इस लेख में उन्हीं में से कुछ को प्रस्तुत किया गया है।

उदाहरणों को देखने से पहले, थोड़ा अनुमान प्रमाण विषय का पुनरवलोकन आवश्यक है, इसलिए पहले संक्षेप में इसके सब विभागों पर दृष्टि डाल लेते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण बताने के उपरान्त, महर्षि गौतम ने अनुमान को परिभाषित किया-

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतोदृष्टं च॥ न्यायदर्शनम् १.१.५॥ अनु०- **प्रत्यक्षम्॥**

अर्थात् प्रत्यक्ष किए हुए (सम्बन्ध) से अनुमान किया जाता है और वह तीन प्रकार का होता है- पूर्ववत्, शेषवत् व सामान्यतोदृष्ट। गौतम इन तीन प्रकारों को पुनः परिभाषित तो नहीं करते, पर इनकी व्याख्या हमें न्यायदर्शन के सबसे प्राचीन वात्स्यायन के भाष्य में प्राप्त होती है जो कि सारांश में इस प्रकार है-

(२) पूर्ववत्- कारण (Cause) को जानकर, कार्य (Effect) को जान लेना। जैसे - अग्नि को देखकर उसके आसपास तापमान अधिक होगा, ऐसा जान लेना।

(२) शेषवत्- कार्य से कारण को जानना। जैसे-धूम से अग्नि का ग्रहण हो जाना क्योंकि जहाँ धूम है, वहाँ उसके कारण अग्नि का होना आवश्यक है।

(२) सामान्यतोदृष्ट- यह दो वस्तुओं के बीच में वह सम्बन्ध है, जो कार्य-कारण का तो नहीं है, परन्तु सामान्य रूप से पाया जाता है। वात्स्यायन यहाँ उदाहरण देते हैं- एक वस्तु, जैसे कोई व्यक्ति अथवा सूर्य, को एक स्थान में देखकर अन्य स्थान में देखने से उसके अथवा हमारे चलने का ज्ञान होना। यह उदाहरण दोषपूर्ण है, क्योंकि यहाँ स्थानान्तरण द्वारा उसके कारण - चलन - का अनुमान लगाया जा रहा है, जहाँ यह कार्य-कारण का सम्बन्ध अच्छी प्रकार ज्ञात हैं। इसलिए यह शेषवत् का ही उदाहरण है। वस्तुतः इस प्रमाण का यही उदाहरण है - जिस वस्तु का जन्म हुआ है, उसका अन्त अवश्यम्भावी है। यहाँ कार्य-कारण सम्बन्ध स्पष्ट नहीं है, तथापि इस तथ्य को कोई भी विचारशील मनुष्य अमान्य नहीं कर सकता, क्योंकि यह सम्बन्ध सामान्य रूप से सृष्टि में दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए इस प्रकार के सम्बन्ध को 'सामान्यतोदृष्ट=साधारणतया देखा गया' कहा जाता है।

वात्स्यायन की इस गलत व्याख्या के फलस्वरूप उसके आगे की पीढ़ियाँ इस प्रमाण का प्रयोग ठीक से न कर सकीं। परन्तु यह प्रमाण वात्स्यायन से पूर्ववर्ती ग्रन्थों में अनेक प्रकरणों में पाया जाता है। सम्भवतः, वात्स्यायन के प्रभाव के कारण ही उन ग्रन्थों में वह इस रूप में समझा भी नहीं जाता रहा हो। आज हम सांख्यदर्शन से उद्धृत ऐसे कुछ उदाहरण देखेंगे। ग्रन्थ का दूसरा ही सूत्र है-

न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्॥१.२॥ अनु०- **त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिः**

अर्थात् दृष्ट उपायों से तीन प्रकार के दुःखों की पूर्णतया निवृत्ति नहीं होती, क्योंकि (एक समय में सभी दुःखों की) निवृत्ति हो जाने पर भी, (अनन्तर अन्य नए दुःखों की) अनुवृत्ति (=आगमन) देखी जाती है।

यहाँ 'दर्शन' शब्द के प्रयोग से प्रतीत होता है कि यहाँ दिया हेतु- **निवृत्ते अपि अनुवृत्तिदर्शनात्**- प्रत्यक्ष प्रमाण का उदाहरण है, परन्तु पुन: देखें तो ज्ञात होता है कि सामान्य रूप से आने-जाने वाले दु:खों का कथन है। सामान्यतया देखा जाता है कि कभी भी दु:खों का अन्त नहीं होता। हम कभी सोचते हैं कि केवल गरीबी ही हमारा अकेला दु:ख है, यह नष्ट हो जाए तो हमारे शेष सभी दु:खों का अन्त हो जाएगा। परन्तु जब धन की प्राप्ति हो जाती है, तब पाते हैं कि हमें ऐसी बीमारी ने घेर लिया, जिसका कोई उपचार ही नहीं है! तो इन दो घटनाओं में कोई कार्य-कारण सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता, परन्तु जीवन के अनुभव से इस सत्यता का ज्ञान होता है कि जीवन कभी पूर्णतया कष्टरहित नहीं होता। यह सत्य सभी के जीवन में दृष्टिगोचर होता है और सदियों में ऐसा ही पाया गया है। इसलिए इसे सबके लिए सब समय मानने में कोई आपत्ति प्रस्तुत नहीं होती। इसी को सामान्यतोदृष्ट प्रमाण कहते हैं। एक स्थल पर अनुमान प्रमाण की प्रवृत्ति को समझाते हुए, कपिल मुनि कहते हैं-

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः॥ १.२५॥

अर्थात् जो इन्द्रियों से ग्रहण न हो रहा हो, उसका अनुमान से बोध किया जा सकता है, जैसे धुएँ से अग्नि का।

इस प्रकार भूमिका बाँधकर, कपिल आगे सूत्र में सृष्टि के सभी तत्त्वों को गिनाते हैं-

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, ...तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि....॥१.२६॥

अर्थात् सत्त्व, रज और तम गुणों की साम्यावस्था प्रकृति (नामक अनादि-अनन्त प्रारम्भिक पदार्थ) है। इस प्रकृति से महत् नामक तत्त्व उत्पन्न होता है, आदि-आदि, और अन्त में ५ तन्मात्राओं से ५ स्थूलभूतों की उत्पत्ति होती है।

आगे के कतिपय सूत्रों में वे प्रत्येक तत्त्व को अनुमान प्रमाण से सिद्ध करते हैं, परन्तु बहुत ही संक्षेप में, यथा-

स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य॥१.२७॥ अनु०- अनुमानेन बोधः (१.२५-सूत्रतः)

अर्थात् (पञ्च) स्थूलभूतों (Elements - आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथिवी) से पञ्चतन्मात्राओं का अनुमान होता है।

यहाँ ऐसी व्याख्या की जाती है कि स्थूलभूल कार्य हैं। कार्य से हम उनके कारणों का अनुमान कर सकते हैं। इसलिए प्रत्येक स्थूलभूत अपने कारण - तन्मात्र - को प्रमाणित करता है। इस प्रकार यह शेषवत् प्रमाण का उदाहरण हुआ। परन्तु सर्वदा ही कार्य कारण का परिचय नहीं देते, यथा - छपी पुस्तक के पन्ने से हम यह पता नहीं कर सकते कि किसने यह पुस्तक लिखी, या किस पुस्तक का पन्ना है; वह जानने के लिए हमें पुस्तक के आरम्भिक पन्नों को देखना पड़ेगा। इसी प्रकार, यहाँ पूर्णतया अस्पष्ट है कि हम इन कार्यों के तन्मात्र नामक कारण क्यों मानें? सम्भव है कि कारण पदार्थ ५ से अधिक हों, अथवा न्यून और मिश्रण द्वारा ५ स्थूलभूतों को जन्म देते हों। तो कपिल ने इतने संक्षेप से कैसे कह दिया? और न समझने के कारण हम तन्मात्र को ठीक से नहीं समझ पाते।

इस विषय में मेरा एक मत है, सुधी जनों को सही लगे तो ग्रहण करके अन्यों को भी पढ़ाएँ। हमारी ५ भिन्न-भिन्न इन्द्रियाँ (Senses) हैं। जिस विषय का एक इन्द्रिय ग्रहण करती है, उसका अन्य चार ग्रहण नहीं कर पातीं। यह प्रत्यक्ष से प्रमाणित है और इसलिए इसमें किसी को भी सन्देह नहीं है। इस तथ्य का अर्थ यह हुआ कि संसार के सब पदार्थों को सबसे पहले हम ५ में विभाजित कर सकते हैं - ५ स्थूलभूत। इसलिए कपिल ने इन पाँचों के लिए कोई प्रमाण ही नहीं प्रस्तुत किया। परन्तु ऐसा समझने से स्थूलभतों के विषय में हमारे ज्ञान की वृद्धि हुई - अब हम समझ गये कि जल का अर्थ केवल पानी नहीं है, अपितु सभी वे रस जिनका स्वाद रसना ले सके 'जल' हैं। इसी प्रकार वायु सभी प्रकार की वाष्प है, अग्नि सभी प्रकार की ऊर्जा है, पृथिवी सभी प्रकार के अन्य पदार्थ हैं, विशेष रूप से जिनमें गन्ध हो, जैसे (Esters) नाम के हाइड्रोकार्बन।

यही नहीं, प्रत्येक इन्द्रिय, जैसे लीजिए घ्राणेन्द्रिय, केवल एक गन्ध नहीं, अपितु सभी गन्धों को सूंघने में सक्षम है। इसका अर्थ हुआ कि सब गन्धों में कुछ एक सामान्य पदार्थ हैं जिसे कि वह इन्द्रिय ग्रहण कर रही है। इस लक्षण वाली वस्तु को 'तन्मात्र' संज्ञा दी गई है, जिसका अर्थ है – केवल वह = केवल जिसमें गन्ध का अणु हो, वह। यह तथ्य इसी प्रकार है जैसे भारतीय दार्शनिकों ने परमाणु का चिन्तन किया था (जिसको पश्चिमी सभ्यता ने अपने ग्रीस देश की खोज बता दिया!)। तन्मात्र को हम गन्ध का परमाणु कह सकते हैं। सो, क्योंकि प्रत्येक गन्ध नासिका द्वारा ग्रहण होती है, इसलिए हम गन्ध-तन्मात्र का अनुमान कर पाते हैं। जैसा हम सरलता से समझ सकते हैं, यह न तो पूर्ववत् अनुमान है, न शेषवत्। बचा सामान्यतोदृष्ट! सो, यह सामान्यतोदृष्ट इसलिए है कि यह सामान्य रूप से देखा जाता है कि सभी गन्ध एक ही नाक से ग्रहण होती हैं। आज तक किसी ने नासिका से देखा नहीं! इसलिए यह अनुमान सम्यक् है कि गन्ध में कुछ ऐसा पदार्थ होगा जिसको केवल नाक ही ग्रहण कर पाती है। वही गन्ध-तन्मात्र कहा गया। इसी प्रकार शृंखला के अन्य घटकों को भी समझना चाहिए। वे सभी सामान्यतोदृष्ट के उदाहरण हैं।

प्रथम अध्याय में ही एक अन्य प्रकार का सामान्यतोदृष्ट का उदाहरण देखने को मिलता है–

नासदुत्पादो नृशृङ्गवत्॥१.७१॥

अर्थात् अवस्तु से वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती (Nothing comes from nothing), जैसे मनुष्यों के सींग नहीं होते।

मुख्य रूप से तो यह उपमान प्रमाण है (जो भी अनुमान प्रमाण का ही प्रभेद है!), जहाँ नरों के अचानक सींग न फूट पड़ने की उपमा द्वारा बिना कारण के कार्य वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकने का तथ्य समझाया गया है। परन्तु यहाँ जो 'नृशृङ्ग' का उपमान है, वह ध्यान देने योग्य है। हमने सब मनुष्य देखे नहीं कि हम पूरे विश्वास से कह सकें कि किसी मनुष्य के कभी सींग नहीं हुए और भविष्य में भी कैसे कहें कि किसी व्यक्ति के सींग निकलेंगे नहीं? फिर भी किसी को इस विषय में कोई संशय नहीं है – क्योंकि यह सामान्यतोदृष्ट है! पाश्चात्य न्याय में इस प्रमाण के प्रकार को Induction Logic कहा जाता है (यह भी भारत से ही गया है!)। अब यदि आप पुन: उपर्युक्त दो उदाहरणों को देखें, तो वहाँ भी समानता को पाएँगे। (नृशृंग, शशशृंग, आदि उमपाएँ अनेक विषयों में प्रयोग की जाती हैं; सर्वत्र इन्हें सामान्यतोदृष्ट प्रमाण जानें।)

उपर्युक्त प्रकार से हम पाते हैं कि सामान्यतोदृष्ट प्रमाण प्राचीन ग्रन्थों में अनेक प्रकार के विषयों में और अनके रूपों में प्रयुक्त हुआ है। न्याय के प्राचीनतम भाष्य की गड़बड़ी के कारण, इसका प्रयोग अनन्तर ग्रन्थों में लुप्तप्राय हो गया है और हमारा ज्ञान भी इस विषय में न्यून हो गया। वस्तुत: वात्स्यायन का भाष्य अनेक स्थलों पर दोषपूर्ण है। जैसे कि इसी प्रकरण में पूर्ववत् अनुमान के लिए वात्स्यायन ने उदाहरण दिया है – मेघों के बड़े हो जाने पर हम अनुमान लगा सकते हैं कि वृष्टि होगी। इस उपपत्ति में सम्भावना है, न कि निश्चय। प्रमाणों में ऐसी अनिश्चितता होने लगे तो वे प्रमाण ही न रहेंगे! इस दूषित उदाहरण के कारण आज भी अधिकतर नैयायिक अनुमान को सत्य के निर्धारण में पूर्णतया उपयुक्त नहीं बता पाते। लौकिक भाषा में भी हम 'अनुमान' को 'अन्देशा' या 'सम्भावना' ही समझते हैं; जबकि इसका अर्थ 'अनु=प्रत्यक्ष के पश्चात् होने वाला' + 'मान=अप्रत्यक्ष का **निश्चित** ज्ञान' है, न कि सम्भावना। इस अज्ञान के कारण प्राचीन विद्या को समझने में बहुत दोष आये हैं। क्या यह कमी कभी पूरी हो पायेगी??

❑❑

भूल सुधार

प्रबुद्ध पाठकवृन्द! जनवरी २०२० के अंक के लेख "मन्त्रार्थ में ऋषि व देवता से अर्थनिर्धारण" में (पृष्ठ-7-10) में भूलवश कई स्थानों पर प्रजापति: के स्थान पर प्रजापित: छपा है। कृपया, इसे प्रजापति: पढ़ा जाये।

अंग्रेजो और मुसलमानों के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द के विचार

(कृष्ण चन्द्र गर्ग, दूरभाष : ०१७२-४०१०६७९)

महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन

द्वारा युधिष्ठिर मीमांसक - प्रथम भाग

१० अगस्त १८७८ को महर्षि दयानन्द की तरफ से मौलवी मुहम्मद कासिम अली को यह विज्ञापन दिया गया था-

कभी वह भी समय था जबकि मजहबी विषयों में बातचीत व शास्त्रार्थ होने पर लोगों के सिर कट जाते थे। और ऐसा भी समय था कि एक मत के अतिरिक्त दूसरे के मत के विषय में किसी प्रकार का प्रवचन करना या व्याख्यान देना मानों प्राणों को खो देना था। और ऐसे भी दिन थे कि जो राजा का मजहब होता था, उसके अनुयायी तो प्रत्येक प्रकार से स्वतन्त्र होते थे, परन्तु क्या साहस कि दूसरे मतवाला अपने सिद्धान्तों को प्रकट कर सके। लाख अपने मन में कोई सत्य को सत्य क्यों न जाने, परन्तु झूठ को झूठ कहने का अधिकार न रखता था। सारांश यह कि सत्य की खोज करने वाले और झूठ को झूठ सिद्ध करने वाले सुलेमान के कारागार में नहीं, तो उनके पीछे होने वाले राजाओं के कारागार में तो अवश्य डाले जाते थे। हजार-हजार धन्यवाद ईश्वर का है कि अब अंग्रेजी सरकार ने अपनी न्यायप्रियता से प्रजा को स्वतन्त्रता प्रदान की। जिस बात को मनुष्य अपने बुद्धि बल से प्रमाणित समझता था, उसको प्रकट करने का ढंग भी उत्पन्न हो गया। सत्य तो यही है कि न्यायकारियों और अन्वेषकों को तो मानो एक सम्पत्ति हाथ लगी है। (पूर्ण संख्या 188)

२३ नवम्बर १८८० को थियोसौफिकल सोसायटी की मैडम ब्लैवास्तिकी को पत्र में महर्षि दयानन्द लिखते हैं - मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूँ कि जो हमने आपस के विरोध, फूट, अनाचार करने, और जैन और मुसलमान आदि की पीड़ा और भ्रम जाल से कुछ-कुछ अलग स्वास्थ्य और स्वतन्त्रता प्राप्त की है कि जिस से मैं वा अन्य सज्जन लोग अपना-अपना सत्य अभिप्राय युक्त पुस्तक रचने, उपदेश करने और धर्म में स्वाधीनपन से आनन्द में प्रवृत्त हो रहे हैं क्या जो श्रीयुत भारतेश्वरी महाराणी, पार्लियामेण्ट सभा और आर्यावर्त देशस्थ राज्याधिकारी धार्मिक विद्वान् और सुशील न होते तो क्या मेरा व अन्य का मुख प्रफुल्लित होकर व्याख्यान, वेदमत प्रचारक पुस्तकों की व्याख्या करनी भी दुर्लभ न होती? और आज तक शरीर भी बचना कठिन न था, इसीलिये पूर्वोक्त महात्माओं को हम लोग धन्यवाद देते हैं। (पूर्ण संख्या ५००)

महर्षि दयानन्द चरित

लेखक बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

स्वामीजी पटना में एक मास रहे और ३ अक्टूबर १८७२ को बेगमपुर के स्टेशन से मुँगेर के लिए रेल पर सवार हो गये। रात्रि के बारह बजे जब गाड़ी जमालपुर जंक्शन पर पहुँची तो मुँगेर की गाड़ी के छूटने में एक घण्टे की देर थी। स्वामीजी कौपीनमात्र धारण किये प्लेटफार्म पर टहलने लगे। एक अंग्रेज इन्जीनियर और उसकी पत्नी प्लेटफार्म पर खड़े थे। मेम साहब को एक नंगे साधु को टहलते हुए देखकर बुरा लगा। उसके पति ने स्टेशन मास्टर को स्वामीजी के पास भेजा कि इस साधु को टहलने से रोक दो। वह तो जानता था कि साधु कौन है। वह डरता-डरता गया और उसने कहा कि महाराज! आप कुर्सी पर आराम कीजिए, अभी गाड़ी छूटने में देर है। स्वामीजी समझ गये कि उसे गोरे साहब ने भेजा है

कि हमें टहलने से रोक दे। उन्होंने स्टेशन मास्टर से कहा कि साहब से कह दो कि हम उस युग के लोग हैं जब बाबा आदम और बीबी हव्वा अदन के उद्यान में नंगे रहने में तनिक भी लज्जा नहीं करते थे। स्वामीजी ने टहलना जारी रखा। स्टेशन मास्टर ने साहब से जाकर कहा कि हुजूर वह कोई भिखमँगा तो है नहीं जिसे प्लटेफार्म से निकाल दूँ। वह एक स्वतन्त्र संन्यासी है जो मुझे और आपको कुछ भी नहीं समझता। नाम पूछने पर स्टेशन मास्टर ने महाराज का नाम बताया तो साहब ने कहा कि क्या प्रसिद्ध सुधारक दयानन्द यही है। इसके पश्चात् वह स्वामीजी के पास गया और जब तक गाड़ी छूटने का समय हुआ तब तक उनसे बात-चीत करता रहा। (पृष्ठ २१४)

सन १८७२ में भागलपुर में एक दिन एक सुशिक्षित मौलवी स्वामीजी से धर्मसम्बन्धी वाद-प्रतिवाद करने के लिए आया। स्वामी जी ने उसे कहा कि हिन्दुओं में जो मुसलमानों के प्रति सहानुभूति का अभाव और द्वेष का भाव है उसका कारण यह नहीं है कि हिन्दुओं को मुसलमानों से निसर्गजात द्वेष है, वास्तव में उसका कारण हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों का व्यवहार ही है। (पृष्ठ २१७)

सन १८७४ में मुम्बई में अनेक अंग्रेज कर्मचारी स्वामी जी से मिलने और उनके व्याख्यान सुनने आया करते थे और उनकी प्रशंसा करते थे। स्वामी जी अंग्रेजी राज्य की बहुत प्रंशसा किया करते थे। इसी कारण से बहुत से लोग उन्हें अंग्रेजों का गुप्तचर कह दिया करते थे। १८७४ में नासिक में स्वामी जी ने यह भी कहा कि भारत में सही अर्थों में अंग्रेज ही ब्राह्मण हैं। (पृष्ठ २७७, २६८)

सन १८७७ में सहारनपुर में पर्दा प्रथा पर बोलते हुए महर्षि दयानन्द ने कहा - स्त्रियों को पर्दे में रखना अनुचित है, यह नहीं है कि बिना पर्दे के स्त्रियाँ सदाचारिणी नहीं रह सकतीं, पर्दे में भी पाप होते हैं। बिना विद्या-प्राप्ति के सदाचारी नहीं हो सकता। पर्दा मुसलमान राजाओं के समय में प्रचरित हुआ, क्योंकि वे जिस किसी की बहू-बेटी को रूपवती देखते थे उसे छीनकर बलात् लौंडी बना लेते थे। इस अत्याचार के कारण हिन्दुओं ने अपनी बहू-बेटियों को पर्दे में रखना आरम्भ कर दिया। अंग्रेजों की स्त्रियाँ पर्दा नहीं करतीं और हिन्दुओं की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमती, विदुषी, साहसी और उच्चाशयवाली होती हैं। (पृष्ठ ३५१)

सन १८७८ में अजमेर में स्वामी जी के व्याख्यानों में सहस्त्रों मनुष्य आते थे। अजमेर के कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर, यूरोपियन पादरी, प्रतिष्ठित मुसलमान प्रभृति भी आते थे। गवर्नमेण्ट कालेज के प्रिंसिपल ने छात्रों को व्याख्यान सुनने जाने के लिए अनुमति दे दी थी। (पृष्ठ ४५१)

सन १८७९ में दानापुर में एक दिन एक सज्जन ने स्वामी जी से कहा कि 'आप इस्लाम के विरुद्ध न कहा करें।' उस समय तो स्वामी जी ने कोई उत्तर न दिया। परन्तु सायंकाल को जो व्याख्यान दिया वह आदि से अन्त तक इस्लाम के सिद्धान्तों पर ही था जिसमें उनकी तीव्र समालोचना की। व्याख्यान का आरम्भ ही इन शब्दों से किया कि "मुझे कहा गया है कि मुसलमानी मत का खण्डन मत करो। परन्तु मैं सत्य को छिपा नहीं सकता। जब मुसलमानों की चलती थी तब वे हम लोगों का तलवार से खण्डन करते थे। अब यह अन्धेर देखो कि मुझे उनका जिह्वा मात्र से खण्डन करने से मना करते हैं। मैं ऐसा अच्छा (अंग्रेजी) राज्य पाकर भला किसी की पोल खोलने से कभी रुक सकता हूँ।" (पृष्ठ ५०१)

सन् १८८१ में रायपुर में स्वामी जी ने ठाकुर हरिसिंह से पूछा कि आपके यहाँ राज-मन्त्री कौन हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि शेख इलाही बख्श हैं, परन्तु वे जोधपुर गये हैं, उनके पीछे उनके भतीजे करीम बख्श (जो वहाँ उपस्थित थे) सब काम देखते हैं। यह सुनकर महाराज ने कहा कि आर्यपुरुषों को उचित है कि यवनों को अपना राज्यमन्त्री न बनाएँ ये तो दासीपुत्र हैं। इसे सुनकर करीम बख्श और अन्य ४-५ मुसलमान, जो वहाँ

शेष पृष्ठ १८ पर

ईश्वर सगुण-निर्गुण : साधक की दृष्टि में

(रामनिवास 'गुणग्राहक', चलभाष : ९०७९०३९०८८)

ईश्वर की सगुणता-निर्गुणता को लेकर पौराणिक जगत् में जो काल्पनिक अवधारणाएँ फैली हुई हैं, इनका निराकरण करने की भावना का समावेश तो हमारी लेखन प्रवृत्ति के मूल में है ही लेकिन नामोल्लेख व उद्धरण देकर ऐसा करना लेख के कलेवर को अनियन्त्रित करने जैसा होगा! चूँकि यह विषय बड़ा गूढ़ और बहुत व्यापक है, इसलिए हम बहुत संक्षेप में समावेशी शैली में और मूलभूत तथ्यों को लेकर सरलता पूर्वक ईश्वर की सगुणता-निर्गुणता की विवेचना करना चाहेंगे। सबसे पहले हमें यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि सगुणता-निर्गुणता संसार के हर पदार्थ से है। जो पदार्थ जिन गुणों से युक्त है, उनकी दृष्टि से वह सगुण है। जो गुण जिस पदार्थ में नहीं होते उनकी दृष्टि से उसे निर्गुण कहा जाता है। इस प्रकार संसार का हर पदार्थ सगुण भी है और निर्गुण भी। हमारी दार्शनिक परम्परा में सगुणता-निर्गुणता की बड़ी सूक्ष्म विवेचना देखने को मिलती है। मुक्तिपथ के पथिक के लिए इन सबका तात्त्विक ज्ञान आवश्यक है। वैशेषिक दर्शन प्रणेता महर्षि कणाद का कथन है-

"धर्म विशेष प्रसूताद् द्रव्य गुणकर्मसामान्य-विशेष समवायकानां पदार्थानां साधर्म्य वैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानाद् निःश्रेयसम्॥" (वैशे. १.१.४)

अर्थात् जब मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान से पवित्र होकर द्रव्य गुण; कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के तत्त्वज्ञान को साधर्म्य अर्थात् जो समान धर्म हैं - जैसे पृथ्वी और जल दोनों जड़ हैं मगर इनमें वैधर्म्य भी है। पृथ्वी कठोर और जल कोमल है के सहित जानता है वही निःश्रेयस् मोक्ष को प्राप्त होता है। चूँकि मनुष्य मात्र का प्रथम और अन्तिम लक्ष्य परमात्मा की आनन्दमयी गोद मुक्ति को प्राप्त करना ही है, इसलिए द्रव्य गुण कर्म आदि का साधर्म्य-वैधर्म्य पूर्वक ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त अनिवार्य है। इनके तत्त्वज्ञान के अभाव में हमारे लोक-परलोक दोनों भ्रम और उलझन में फँस कर रह जाते हैं।

इस अनिवार्यता को ध्यान में रखकर ईश्वर की सगुण-निर्गुणता से पहले हम भौतिक पदार्थों की सगुण-निर्गुणता को समझ लें तो आगे बढ़ने में सरलता रहेगी। इसे समझने के लिए सबसे पहले द्रव्य और गुण का स्वरूप समझ लें। कणाद के अनुसार-

"पृथिव्यापस्तेजोवयुराकाशं दिगात्मा मन इति द्रव्याणि" (वैशे. १.१.५)

अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, दिशा, काल, मन और आत्मा ये नौ द्रव्य कहलाते हैं। ध्यातव्य है कि सामान्यतः दार्शनिक भाषा में आत्मा-परमात्मा दोनों को आत्मा शब्द से ही अभिहित किया गया है। द्रव्य गणना के बाद द्रव्य का परिचय देते हुए सूत्र लिखा है-

"क्रियागुणवत्समवायि कारणमिति द्रव्य लक्षणम्" (वैशे. १.१.५)

अर्थात् जिसमें क्रिया और गुण वा केवल गुण रहे, उसको द्रव्य कहते हैं। इन नौ द्रव्यों में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुण वाले हैं तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन केवल गुण वाले हैं। इससे सिद्ध है कि द्रव्यों में कुछ ऐसे तो हैं जो क्रिया से रहित हैं, मगर गुणों से रहित कोई द्रव्य नहीं है। अब गुणों के बारे में जानने का प्रयास करते हैं-

"रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्यापरिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषो प्रयत्नाश्च गुणाः॥" (वैशे. १.१.६)

अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख,

दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व द्रवत्त्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द ये चौबीस गुण कहलाते हैं। आगे बढ़ने से पहले यहाँ एक बात स्पष्ट करनी आवश्यक है। सूत्र में प्रयत्न तक सत्रह गुण गिनाये गये हैं। गुरुत्व से शब्द पर्यन्त सात गुण सूत्रस्थ 'च' पद से ग्रहीत हैं। वैशेषिक में इन गुरुत्व आदि को गुण स्वीकार किया है, लगता है इसी कारण विस्तार से बचते हुए इन सात गुणों के लिए 'च' पद का प्रयोग किया है।

अब गुण लक्षण भी देखें- **"द्रव्याश्रय गुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुण लक्षणम्॥"** (वैशे. १.२.१६)

अर्थात् गुण उसको कहते हैं जो द्रव्य के आश्रय रहे, अन्य गुण का धारण न करे, संयोग और विभाग में कारण न हो, अर्थात् एक-दूसरे की अपेक्षा न करे। पूर्व में हम देख चुके हैं कि कोई द्रव्य चाहे क्रिया शून्य हो, मगर कोई द्रव्य ऐसा नहीं जो गुण रहित हो। इधर यहाँ गुणों का परिचय देते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है कि गुण द्रव्य के आश्रय ही रहते हैं। सरल शब्दों में कहें तो कोई द्रव्य, कोई पदार्थ बिना गुण के नितान्त गुणहीन हो नहीं सकता और कोई गुण बिना द्रव्य के आश्रय नहीं रह सकता। ईश्वर को द्रव्य अर्थात् पदार्थ मानते हैं तो वह नितान्त गुणहीन नहीं होगा और अगर वह गुण है तो किसी द्रव्य के आश्रय ही रह सकेगा। जो भोले भक्त ईश्वर को निर्गुण निराकार तथा सगुण साकार कहते हैं, वे दार्शनिक दृष्टि से कितने खोखले हैं, यह बताने की आवश्यकता नहीं। अगर उनके अनुसार निर्गुण का आशय गुणहीन वा गुण शून्य मानें तो दार्शनिक दृष्टि से ऐसा कहना हास्यस्पद ही माना जाएगा। जैसा कि हम पूर्व में कथन कर चुके हैं कि संसार का हर पदार्थ जिन गुणों से युक्त है, उनकी दृष्टि से सगुण और जिनसे रहित है, उनकी दृष्टि से निर्गुण कहाता है। जो यह देखना चाहें कि किस द्रव्य में कौन-कौन से गुण हैं, वे आचार्य प्रशस्तपाद कृत 'पदार्थधर्म संग्रह' नामक ग्रन्थ के 'द्रव्यपरिच्छेद' का अवलोकन कर लें।

स्वाभाविक व नैमित्तिक गुणः- दर्शनों के अध्येता जानते हैं कि पृथ्वी आदि कतिपय द्रव्यों में स्वाभाविक गुण के साथ कुछ गुण नैमित्तिक भी होते हैं। जैसे- **"रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथ्वी"** (वैशे. २.१.१.) अर्थात् रूप, रस, गन्ध और स्पर्श वाली पृथ्वी है। **"व्यवस्थितः पृथिव्यं गन्धः"** (वैशे. २.२.२) के अनुसार पृथ्वी का स्वाभाविक गुण तो गन्ध ही है, शेष रूप, रस, और स्पर्श तो अग्नि, जल और वायु के योग से हैं। यही कथा अग्नि, जल और वायु की है। "स्पर्शवान् वायुः" (वैशे. २.१.४) के अनुसार वायु का स्वाभाविक गुण स्पर्श है, लेकिन वायु में उष्णता अग्नि के योग से और शीतलता जल के योग से है। इससे पता चलता है कि कुछ द्रव्य ऐसे भी हैं, जिनमें उनके स्वाभाविक गुण के साथ अन्य द्रव्यों के योग से कुछ नैमित्तिक गुण भी आ जाते हैं। लेकिन ऐसा सब द्रव्यों के साथ नहीं है। पंच महाभूत कहे जाने वालों में भी आकाश ऐसा द्रव्य है, जिसमें उसके स्वाभाविक गुण शब्द के अतिरिक्त कोई संयोगजन्य गुण नहीं है। परमात्मा भी ऐसा द्रव्य है, जिसमें केवल स्वाभाविक गुण ही रहते हैं उसमें कोई संयोगजन्य गुण नहीं रहता। यह दार्शनिक विवरण देने के मूल में एक ही भाव है, वह यह कि कहीं लोग इस भ्रम में न पड़ जाएँ कि पृथ्वी आदि की भाँति परमात्मा में भी कुछ गुण अन्य द्रव्यों के संयोग से आ जाते हों। ऐसे ही संयोगजन्य गुणों के कारण ईश्वर में सगुणता-निर्गुणता आती जाती रहती हो। पंच महाभूतों में सूक्ष्म आकाश भी अन्य पृथ्वी, जल आदि के गुणों से लिप्त नहीं होता तो परम सूक्ष्म परमात्मा में ऐसा कैसे सम्भव है?

सगुण-निर्गुण विवेचनाः- सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में महर्षि दयानन्द सरस्वती परमात्मा की सगुणता-निर्गुणता की विवेचना करते हुए लिखते हैं-

"गुण्यन्ते ये ते गुणा वा यैर्गुणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः।"

जितने सत्त्व, रज, तम, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि जड़ के गुण, अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि

क्लेश जीव के गुण हैं, उनसे जो पृथक् है, इसमें **"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्"** (कठो. ३.१५) इत्यादि उपनिषदों के प्रमाण हैं। जो शब्द, स्पर्श, रूप आदि गुण रहित है इससे परमात्मा का नाम निर्गुण है। **"यो गुणैः सह वर्तते स सगुणः"** जो सबका ज्ञान, सर्वसुख, पवित्रता, अनन्त बलादि गुणों से युक्त है, इसलिए परमेश्वर का नाम सगुण है। इसके बाद ऋषि दयानन्द ने बड़ी सरलता से सब पदार्थों की सगुणता-निर्गुणता समझाने के लिए लिखा है- "जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से सगुण और इच्छादि गुणों से रहित होने से निर्गुण है। वैसे ही जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर निर्गुण और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से सगुण है। अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो सगुणता-निर्गुणता से पृथक् हो।"

परमात्मा के गुणः- प्रथम समुल्लास के उपसंहार की ओर बढ़ते हुए परमेश्वर के नामों के विवरण के बाद ऋषि लिखते हैं- "ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं, वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं। उनमें से प्रत्येक गुण कर्म और स्वभाव का एक-एक नाम है।" इसमें कभी किसी अस्तिक कहलाने वाले को कभी कोई सन्देह नहीं रहा कि परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव अनन्त हैं। अभी तक किसी ने ईश्वर के गुणों, कर्मों और स्वभाव की संख्या का सीमा नहीं बताई। आगे चलकर ऋषि लिखते हैं- "वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण, कर्म, स्वभाव व्याख्यात किये हैं, उनके पढ़ने-पढ़ाने से (ही उनका) बोध हो सकता है।" महर्षि का वचन अत्यन्त उपयोगी है, वेद विद्यावित् इसका अनुमोदन करते हैं। वेदादि शास्त्र और ऋषि-महर्षि परमात्मा को गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से असंख्य और अनन्त बता रहे हैं, उस परमेश्वर को नितान्त निर्गुण (गुणहीन) कहना-मानना बालकपन नहीं तो क्या है? परमात्मा के गुणों की गणना सम्भव नहीं. हाँ इतना हमें ध्यान रखना होगा कि पृथ्वी आदि जड़ और अल्पज्ञ जीव के गुणों की दृष्टि से परमात्मा निर्गुण है।

गुण-संक्रमणः- प्रकृति के पदार्थों से प्रारम्भ होती हुई हमारी यह गुण चर्चा परमात्मा के असंख्य गुणों तक आ पहुँची तो एक प्रश्न अनायास ही मन-मस्तिष्क में कुलबुलाने लगा कि हमें प्रकृति या परमात्मा के गुणों से क्या लेना-देना? कोई भी वस्तु अथवा गुण हमारे किसी काम वा उपयोग का नहीं तो हमें उसकी चर्चा से भी क्या लाभ? ऐसी स्थिति में परमात्मा की सगुणता-निर्गुणता को जानना-समझना भी हमारे लिए कुछ उपयोगी और लाभदायक होना चाहिए। ईश्वर की सगुणता-निर्गुणता की उपयोगिता तो यह है कि हम जो ईश्वर की भक्ति करते हैं, वह निर्गुण-सगुण दो ही प्रकार की होती है। महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में लिखते हैं- "वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान्, शुद्ध, सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध परमेश्वर अपनी जीव रूपी सनातन प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है, यह सगुण स्तुति, अर्थात् जिस-जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुण, (अकायम्) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस-जिस राग-द्वेषादि गुणों से रहित मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है।"

लाभ की बात करें तो महर्षि के शब्दों में- "इसका फल (अर्थात् लाभ) यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण, कर्म, स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे।" ऋषि लिखते हैं कि परमेश्वर के गुण कीर्तन करते रहना, अपना चरित्र नहीं सुधारना निष्फल है। वेद के द्वारा ईश्वर ने भी ऐसा ही विधान दिया है, यजुर्वेद का मन्त्र कहता है- **"तेजोऽसि**

शेष पृष्ठ १८ पर

सज्जनों से द्वेष और दुष्ट आचरण वालों से प्रेम उचित नहीं

(मनमोहन कुमार आर्य, चुक्खूवाला-२ देहरादून, चलभाष : ९४१२९८५१२१)

द्वेष किसी से नफरत करने को कहते हैं। इसके अनेक कारण होते व हो सकते हैं। कुछ लोग अच्छे होते हैं परन्तु उनके प्रति भी कुछ लोग व समुदाय अपने किन्हीं स्वार्थों के कारण द्वेष करते हैं। ऐसा करना वस्तुतः बुरा है। परन्तु कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो अपने स्वार्थ के लिये दूसरों के हितों की उपेक्षा ही नही करते अपितु जानबूझकर उनकी हानि भी करते हैं। ऐसे अनेक प्रकार के अपराध होते हैं। एक अपराध भ्रष्टाचार को ही लें। भ्रष्टाचार से एक व्यक्ति को लाभ होता तो है परन्तु वह अपने इस दुष्कृत्य से अनेकों निर्दोष लोगों व उनके हितों को दुःख, पीड़ा व हानि पहुँचाता है। भ्रष्टाचार चाहे छोटे स्तर पर किया जाये चाहे बड़े स्तर पर किया जाये, वह बुरा होता है। बड़ा भ्रष्टाचार देश को दीमक की तरह से खोखला कर देता है। भारत की आजादी के बाद देश में अनेक बड़े-बड़े भ्रष्टाचार हुए जिन्हें करने वाले देश के शीर्ष पदों पर बैठे व्यक्ति थे। बहुत से ऐसे कुकृत्यों को राजनीतिक शीर्ष लोगों का संरक्षण प्राप्त रहता है और उनके द्वारा उन्हें बचाया भी जाता है। भ्रष्टाचार करने व करवाने वालों सहित उनको बचाने वाले व छुपाने वाले भी उतने ही दोषी व देश, समाज व ईश्वर के अपराधी होते हैं। ऐसे लोगों के प्रति यदि कोई कहता है कि भ्रष्टाचारी से द्वेष मत करो तो यह कुछ अटपटा लगने के साथ ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि यह बात करने वाला उस भ्रष्टाचारी व भ्रष्टाचारियों का समर्थक है।

हमें निर्दोष या मिथ्या आरोपियों से तो सहानुभूति रखनी चाहिये परन्तु जिनकी प्रवृत्ति, नियत, क्रियाकलाप तथा महत्वाकांक्षायें बड़ी हैं, जो सच्चे आस्तिक न होकर अपने व्यवहार से नास्तिक होने का परिचय देते हैं और जिनका ईश्वर की कर्म-फल व्यवस्था पर विश्वास नहीं है, ऐसे लोगों के प्रति सहानुभूति रखना उनसे घृणा व द्वेष न करना, ऐसे लोगों का एक प्रकार से समर्थन प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि कहीं न कहीं द्वेष को हर स्थिति में बुरा मानने वाला व्यक्ति बुरे कामों का समर्थन कर रहा है। ऐसा ही कुछ कुछ अहिंसा के प्रति भी किया जाता है। जो हिंसा को हर स्थिति में बुरा मानते हैं वह अहिंसा और हिंसा को ठीक प्रकार से जानते ही नहीं हैं। किसी एक व्यक्ति अथवा कुछ लोगों को प्रताड़ना व हिंसा से यदि सहस्रों व लाखों लोगों वा प्राणियों की जान बचती है तो वह हिंसा नहीं अपितु अहिंसा ही होती है।

रामचन्द्र जी ने रावण को मारा था इससे अनेक धर्म पारायण ऋषि-मुनियों व सज्जन लोगों के प्राणों व जीवन की रक्षा हुई थी। अनेक निर्दोष राजा जो रावण ने अपने कारागार में अपनी शक्ति के नशे में बन्द किये हुए थे और जिनका स्वत्व वा राज्य का हरण रावण ने किया था, वह सब राजा और उनकी प्रजा रामचन्द्र जी के रावण पर अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध आक्रमण से सुखी हुई थी।

इससे यही सन्देश मिलता है कि अहिंसा हर हाल में अच्छी नहीं होती और हिंसा भी हर परिस्थिति में बुरी नहीं होती। जहाँ सम्भव हो अहिंसा से ही काम लेना चाहिये परन्तु अनेक परिस्थितियों में हिंसा का सहारा व्यक्तिगत रूप से भले ही ठीक न लगे परन्तु देश, समाज व निर्दोष लोगों की रक्षा के लिये आत्मरक्षा व समाज की रक्षा में कुछ उचित निर्णय लेना ही पड़ता है। हमारे कानून में भी कुछ वीभत्स अपराधों के लिये कारावास, सश्रम कारावास और मृत्युदण्ड तक का विधान है। यह यही बताता है कि कुछ ऐसे अपराधी होते हैं जिनके प्रति दया, करुणा, प्रेम, सद्व्यवहार, उनकी रक्षा व उनसे सहानुभूति

उचित नहीं होती। उनको उनके अपराध के अनुसार व उनकी प्रवृत्ति के अनुरूप यथायोग्य व्यवहार जो न्याय से युक्त हो, वैसा व्यवहार वा दण्ड देना उचित होता है।

मनुष्य को अनावश्यक किसी से द्वेष नहीं करना चाहिये। हमारा पड़ोसी, मित्र व शत्रु भी यदि सद्कर्मों व सद्व्यवहार से प्रतिष्ठा, धन, सम्पत्ति, सुविधायें एवं यश प्राप्त करता है तो हमें उससे प्रेरणा लेकर स्वयं उसी प्रकार के कार्य करने चाहिये। ऐसा करने से हमें लाभ होता है और ऐसे सज्जन पुरुषों से द्वेष करने से हमें वर्तमान सहित भविष्य में भी हानि होती है। वेदों में भी द्वेष को बुरा कहा गया है और सन्ध्या में ईश्वर की उपासना करते हुए कहा जाता है कि जो कोई हमसे द्वेष करता है या जिस किसी से हम द्वेष करते हैं, उस द्वेष को हम ईश्वर की न्याय व्यवस्था में प्रस्तुत कर देते हैं। इसका अभिप्राय है कि हम उससे लड़कर अपनी शक्ति नष्ट करने और अपने मन में अशान्ति उत्पन्न करने से अच्छा है कि हम उसकी उपेक्षा करें और अपने कर्तव्य कर्मों एवं शुभ कार्यों में किसी प्रकार की बाधा न आने दें। उसके और अपने द्वेष को परमेश्वर की न्याय व्यवस्था में समर्पित कर दें। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि हर स्थिति में हम द्वेष करने वाले अपने विरोधी व शत्रु की हर प्रकार की प्रताड़ना को सहन करते रहें और अपने प्राण व परिवार के हितों को भी स्वाहा व अन्त्येष्टि ही कर दें। ऐसे लोगों के लिये ही ऋषि दयानन्द जी ने वेदों के ज्ञान के अनूकूल व अनूरूप नियम बनाया है- **"सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।"** इस धर्मानुसार शब्द में द्वेष के कारण पर सत्य और असत्य की दृष्टि से विचार कर पक्षपातरहित व न्यायपूर्ण निर्णय लेने की बात कही गई है।

जब हम शक्तिशाली होते हैं तो लोग हमसे द्वेष करते हुए डरते हैं। उनको यह भय होता है कि हम उसके द्वेष का यथोचित उत्तर व प्रतिक्रिया दे सकते हैं। द्वेष करने वाले व्यक्ति प्रायः अपने से कमजोर लोगों से ही द्वेष करते हैं और उनके साथ अनुचित व अतार्किक व्यवहार, उनका शोषण, उनके प्रति अत्याचार व हिंसा का व्यवहार करते हैं। अरब देशों में दण्ड के नियम कठोर हैं और अनुमान होता है कि वहाँ त्वरित न्याय होता है जिससे वहां अपराध कम होते हैं। न्याय का सिद्धान्त भी यही है कि अपराध करने वाले को यथाशीघ्र, अपराध के अनुरूप, न कम और न अधिक दण्ड अविलम्ब मिले। उसमें किसी प्रकार का किसी स्तर से पक्षपात न हो। शक्तिशाली लोग उसको बचाये नहीं। लेकिन इस सिद्धान्त का पालन देश व समाज में होता दिखाई नहीं देता। राजनीति में देखें तो प्रायः सभी अपने लोगों को बचाते व दूसरे दलों पर न केवल आरोप लगाते व उनकी आलोचना ही करते हैं अपितु स्वार्थ से प्रेरित होकर अच्छे को भी बुरा बताने में तत्पर रहते व जनता को गुमराह करते हैं। यह बातें सभी को स्पष्ट हैं। इसका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। आज के आधुनिक युग में भी हम मनुष्य को सत्य के प्रति निष्ठावान नहीं बना पाये यह मनुष्य की सबसे बड़ी किलता व आश्चर्य है। परमात्मा मनुष्य के मन व आत्मा में बैठा हुआ उसे अच्छे काम करने पर उत्साहित व आनन्दित करता है और बुरे काम करने पर उसकी आत्मा में भय, शंका व लज्जा को उत्पन्न करता है परन्तु हम व हमारे देश व समाज के लोग ऐसे हैं जो ईश्वर की आवाज भी नहीं सुनते और अपने स्वार्थ व प्रवृत्ति के अनुरूप काम करते हैं जो अनेक परिस्थितियों में सत्य व उचित नहीं होता। आज के युग में मनुष्य के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती मनुष्य को मनुष्य बनाना है जो सत्य को धारण व ग्रहण करने की प्रवृत्ति वाले हों तथा असत्य का त्याग करने सहित असत्य के प्रति उसके मन में तीव्र घृणा का भाव हो।

ऋषि दयानन्द ने मनुष्य को मनुष्य बनाने के काम पर विशेष ध्यान दिया था। इसी कारण से उन्होंने संस्कारविधि ग्रन्थ लिखा। उनके सभी ग्रन्थ मनुष्य को मनुष्य, सत्य पर चलने वाला व असत्य का त्याग करने वाला, मननशील एवं दूसरों से आत्मवत् व्यवहार करने वाला बनाने की

दृष्टि से ही लिखे गये हैं। यही कारण है कि ऋषि दयानन्द मनुष्य के लिये प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञों अर्थात् पाँच महाकर्त्तव्यों का विधान करते हैं। पञ्चमहायज्ञों में प्रथम सन्ध्या का स्थान है। सन्ध्या में मनुष्य को ईश्वर के सत्यस्वरूप का ध्यान करते हुए उसके सत्य गुण, कर्म व स्वभाव को दृष्टि में रखकर उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना करनी होती है। इसका परिणाम यह होता है कि ईश्वर के गुणों का ध्यान व चिन्तन करने से हमारे दुर्गुण, दुर्व्यसन व दुःख आदि दूर होते हैं और हमारी आत्मा ईश्वर के गुणों, कर्म व स्वभावों के अनुकूल व अनुरूप बनती है। इससे मनुष्य परोपकार, देशहित, समाज हित, दूसरों की सेवा, दान व पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करते हुए मानवता की अन्यतम सेवा करता है। अग्निहोत्र यज्ञ करने से वायु व जल शुद्धि सहित मनुष्य का आत्मा यज्ञीय भावनाओं के अनुरूप सत्य गुणों से युक्त व परोपकारी स्वभाव वाली बनती है। पितृयज्ञ करते हुए माता, पिता व वृद्धजनों की बिना किसी स्वार्थ तथा कर्त्तव्य भावना से सेवा की जाती है। इससे माता-पिता आदि हमारे जन्मदाता व पालनकर्ताओं को सुख मिलता है। बलिवैश्व देव में पशु-पक्षियों की रक्षा व उनका हित होता है और अतिथि यज्ञ में विद्वान् सत्पुरुषों व आचार्यों को सम्मान देने व उन्हें द्रव्य दान करने से उनका जीवन भी सुखी व समाज व देश को समुन्नत करने में लगता है। वह यशस्वी जीवन व्यतीत करते हैं और देश के बच्चों को सद्गुणों की शिक्षा देते हैं। यह शिक्षा ही आज समाज से लुप्त हो गयी है। आज का हर माता-पिता अपनी सन्तानों को धनवान् देखना चाहता है। यह भावना तो अनुचित नहीं परन्तु उन्हें अपनी सन्तानों को यह भी बताना चाहिये कि अनुचित साधनों से धन मत कमाना। ऐसे माता-पिता देश व संसार में शायद कम ही होंगे।

हम द्वेष की चर्चा कर रहे हैं। सत्पुरुषों से द्वेष करना गलत है और देश के लिये हानिकारक लोगों व इतिहास पुरुषों के कुकृत्यों को छिपाना तथा उनसे द्वेष के स्थान पर उनका कीर्तिज्ञान करना भी अनुचित है। बहुत से लोग राम, कृष्ण, चाणक्य, वीर शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह जी के श्रेष्ठ व अच्छे कार्यों की प्रशंसा नहीं करते। ऐसे जो लोग हुए हैं व समाज में हैं वह सब द्वेष के अवतार कहे जा सकते हैं। बिना देश हित व समाज हित के किसी व्यक्ति विशेष या समुदाय से द्वेष करना अनुचित है परन्तु जो लोग अनुचित कार्य व व्यवहार करते हैं, जिनके विचार व प्रेरणायें लोगों को अनावश्यक दुःख व कष्ट में डालती हैं तथा जो अपने लोगों के दुष्कृत्यों पर मौन रहते हैं, उनकी खुलकर आलोचना, निन्दा व भर्त्सना नहीं करते हैं, उनसे द्वेष न रखकर सहानुभूति रखना व उनसे प्रेम करना किसी दृष्टि से उचित नहीं है। सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार व यथायोग्य व्यवहार करने का सिद्धान्त ही उचित है।

द्वेष बुरी चीज है। इसे तभी दूर किया जा सकता है कि जब दूसरे भी हमसे द्वेष न करें। यदि कोई हमसे द्वेष करता है और हम उससे किञ्चित द्वेष व अपनी रक्षा न करें तो इसका परिणाम बुरा हो सकता है। उस सीमा तक जिससे हमें किसी प्रकार की हानि न हो, हमें द्वेष करने वालों से सावधान रहते हुए उनके स्वभाव परिवर्तन के उचित उपाय करना भी आवश्यक है। यदि हमारे अन्दर सामर्थ्य है तो हमें द्वेष करने वालों का उचित रीति से द्वेष दूर कर देना चाहिये। इसके चार तरीके शास्त्रों ने सुझायें हैं। यह हैं साम, दाम, दण्ड और भेद। एक कहावत यह भी सुनने को मिलती हैं कि कुछ लोग बहुत ही अधिक अमानवीय प्रवृत्ति के होते हैं। उनके लिये कहावत है **'लातो के भूत बातों से नहीं मानते'**। यदा-कदा कुछ परिस्थितियों में यह बातें उचित प्रतीत होती हैं। पड़ोसी देश ने हमारे देश के विरुद्ध कई दशकों से आतंकवाद और अन्य अनेक प्रकार से हमें चुनौतियाँ दी हैं और प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से हमें कमजोर करने का प्रयत्न किया। हमारी कमजोर सरकारें उसकी उन हरकतों की उपेक्षा करती रहीं। इसके परिणामों से हमें अपने देश के अनेक सैनिकों एवं नागरिकों के जीवनों से हाथ धोना पड़ा है। यहाँ तक कि हमारी संसद पर हमला भी कराया गया।

उनका ऐसा करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं था। यहाँ यथायोग्य अपितु उससे कुछ अधिक कठोर व्यवहार करना उचित था। हमारे देश के वर्त्तमान प्रधानमंत्री के नेतृत्व में यथायोग्य व्यवहार की नीति का हल्का सा अनुसरण किया गया है जिससे उन्हें देश के लोगों का अत्याधिक प्यार और समर्थन मिला है। नीति यह होनी चाहिये कि हम इतने बलवान एवं कठोर हों कि कोई हमारे विरुद्ध कुछ अप्रिय करने की सोच भी न सके। अमेरिका, इजराइल, चीन, रूस आदि इसी नीति का पालन करते हुए दिखते हैं। हमारे देश में वोट बैंक की राजनीति करने वालों को यह सत्य एवं देशहितकारी नीति समझ में नहीं आती। हिंसा व अहिंसा विषय पर देश के अन्तर्राष्ट्रीय कवि डा. सारस्वत मोहन मनीषी जी की एक महत्त्वपूर्ण कविता है। उसकी पहली पंक्ति है-

अहिंसा अच्छी चीज है, यह मन की कस्तूरी है।
पर दुष्ट यदि न माने तो हिंसा बहुत जरूरी है॥

यह पूरी कविता अत्यन्त प्रेरणादायक एवं विचारोत्तेजक है। सबको इसको सुनना व पढ़ना चाहिये। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं।

❑❑

पृष्ठ ११ का शेष

बैठे थे, क्रोध में भर गये। थोड़ी देर पश्चात् सब चले गये। (पृष्ठ ५५८)

भ्रान्ति निवारण - लेखक महर्षि दयानन्द

भ्रान्ति निवारण पुस्तक की भूमिका में स्वामी जी लिखते हैं-

दूसरा कारण आर्यों के बिगाड़ का यह भी है कि उनको जैन लोगों ने बहुत कुछ दबाया और सत्यग्रन्थों का नाश किया। फिर इन्हीं के समान मुसलमानों ने भी अपने धर्म का पक्ष करके दुःख दिया। और जब से अंग्रेजों ने इस देश में राज किया तो इन्होंने यह बात बहुत अच्छी की कि सब प्रकार की विद्याओं का प्रचार करके प्रजा को समान दृष्टि से सुधारा।

सत्यार्थप्रकाश - समुल्लास ग्यारह

महर्षि दयानन्द ने अपने महान ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' में योरोपियनों की उन्नति के कारणों के बारे में लिखा है-

"बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या-सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे-बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होना। वे विद्वान् होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते, जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित करके करते हैं। अपनी स्वजाति की उन्नति के लिए तन, मन, धन व्यय करते हैं। आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। .... और जो जिस काम पर रहता है उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देशवालों को व्यापार आदि में सहाय देते हैं। इत्यादि गुणों और अच्छे-अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति है।"

❑❑

पृष्ठ १४ का शेष

तेजोमयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि, बलमसि बलं मयि धेहि, ओजोऽस्योजोमयि धेहि॥" (१९.९) अर्थात् हे जगदीश्वर! आप प्रकाश स्वरूप हो, कृपा कर मुझमें भी प्रकाश स्थापना कीजिये, आप अनन्त पराक्रम हो, कृपा कर मुझमें पराक्रम धरिये, आप अनन्त बल युक्त हैं, मुझमें भी बल धारण कीजिये। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं, मुझको भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं, मुझको भी वैसा ही कीजिये। आप निन्दा स्तुति व स्व-अपराधियों को सहने करने वाले हैं, कृपा करके मुझे भी वैसा ही कीजिये। परमेश्वर की स्तुति आदि करके स्व जीवन को परमेश्वर के गुणों से पवित्र करने के लिए ईश्वर की सगुणता-निर्गुणता का सम्यक् ज्ञान होना अनिवार्य है।

❑❑

शताब्दी लेखमाला

आर्यसमाज नया बांस के इतिहास की झाँकियाँ (३)

(राजेन्द्र 'जिज्ञासु', अबोहर, मो.- ९४१७६४७१३३)

श्री ओ३म् प्रकाश जी कपड़े वाले पूर्व प्रधान आर्यसमाज नया बांस आर्यसमाज के एक ऐसे कर्मठ और विचारशील सेवक थे जिन्हें हम आर्यसमाज का चलता-फिरता इतिहास कह सकते हैं। हमने उनके मुख से जो-जो संस्मरण सुने वे सब हमने अपने सीने में सुरक्षित कर लिये।

'पादरी' गुलाम मसीह ने आर्यसमाज का गुणगान किया:- यह घटना देश के विभाजन से बहुत पूर्व की है। पौराणिकों ने कभी भी ईसाई, मुसलमान विद्वानों से न तो कभी शास्त्रार्थ ही किया और न ही उनके आक्रमण का उत्तर देने का साहस दिखाया। ऐसा प्रसिद्ध लेखक तथा राधा स्वामी मत के तीसरे गुरु श्री हजूर जी महाराज ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है। इनका सनातन धर्म प्रचार तो ऋषि दयानन्द को कोसना ही रहा है परन्तु एक अपवाद अवश्य है।

दिल्ली में एक बार पौराणिकों को ईसाईयों से शास्त्रार्थ करना पड़ गया। जब गले में पड़ा ढ़ोल बजाना ही पड़ गया तो गाँधी ग्राउण्ड (फव्वारा के समीप होता था) में शास्त्रार्थ सुनने को भारी भीड़ एकत्र हो गई। पौराणिक हिन्दू इतने उत्साह से इस शास्त्रार्थ को सुनने नहीं पहुँचे जितने कि आर्यसमाजी। ईसाई मत की ओर से पादरी गुलाम मसीह ने शास्त्रार्थ किया। यह सज्जन प्रज्ञाचक्षु थे। क्योंकि गाँधी ग्राउण्ड नया बांस के पास ही पड़ता है सो सारा आर्यसमाज नया बांस पौराणिकों का उत्साह बढ़ाने और इनकी हिम्मत देखने वहाँ पहुँच गया।

पादरी गुलाम मसीह ने सनातन हिन्दू धर्म की मान्यताओं को अश्लील बताते हुए ऋग्वेद के एक 'गणानां त्वं गणपतिम्' २.२३.१ को प्रमाण स्वरूप वहाँ सुनाते हुए कहा कि हिम्मत है तो इस भरी सभा में अपने प्रमाणित सनातनी भाष्य से इसके अर्थ यहाँ पढ़कर सुना दो। मैं तो ऐसे गंदे अर्थ न बोल सकता हूँ और न पढ़ सकता हूँ।

अब पौराणिक पण्डित को यह चुनौती स्वीकार करनी पड़ी। उसने खड़े होकर इस मन्त्र के जो अर्थ बोलकर सुनाये वे न तो अश्लील थे और न ही किसी को अब पर कुछ आपत्ति हो सकती थी।

तब पादरी जी ने अपनी बारी पर कहा- "यह अर्थ आपने कौन से पौराणिक अथवा सनातनी भाष्यकार के ग्रन्थ से सुनाये हैं?" पादरी ने भरी सभा में कहा कि भाई यहाँ कोई आर्यसमाजी हो तो मेरे पास यहाँ आ जावे और पौराणिकों को कहा कि आप मुझे अपने वेद भाष्य दिखाओ कि जिनमें यह अर्थ लिखे हैं। पौराणिक पण्डित ने जिस ग्रन्थ से यह अर्थ पढ़कर सुनाये वह तो महर्षि दयानन्द का वेद भाष्य था। यह पादरी के व्यक्तियों ने जो हिन्दी जानते थे बोलकर बता दिया और जो आर्यसमाजी ऊपर गया था वह नया बांस या चावड़ी बाजार का सभासद् था। दीवान हॉल समाज तब था ही नहीं।

पादरी गुलाम मसीह तब क्या बोले? जब ऊँची आवाज से ईसाई मञ्च से ऋषि के वेद भाष्य को उठाकर दिखाया गया तो पादरी गुलाम मसीह ने कहा- "आप सायण, महीधर के अपने पौराणिक प्रामाणिक भाष्यों से इस मन्त्र का अर्थ पढ़कर सुनाओ। यह तो स्वामी दयानन्द जी का वेद भाष्य है। आर्यसमाज से हमारे शास्त्रार्थ होते ही रहते हैं। आर्यसमाज इस भाष्य का प्रमाण दे तो हमें मान्य है। जब आर्यामाज से हमारा शास्त्रार्थ होगा तो ऋषि दयानन्द का भाष्य ही मान्य होगा।"

ऋषि का जय-जयकार हो गया:- इस करारी चोट को खाकर पौराणिक दल ने भी हिम्मत न हारी झट से सनातनियों के तिलकधारी विद्वान् बोल पड़े- "तो यह बताओ ऋषि दयानन्द तुम्हारा क्या लगता था? वह भी हमारा ही था। घर में हमारे लाख मतभेद हैं परन्तु ऋषि दयानन्द था तो हमारा ही। हमने कब कहा कि वह हमारा नहीं था।"

जब पौराणिक विद्वान् ने यह घोषणा की तो गाँधी मैदान में सब हिन्दुओं ने करतल ध्वनि से हर्षोल्लास प्रकट किया। वहाँ उपस्थित जो नया बांस, चावड़ी बाजार, सीताराम बाजार तथा दूरस्थ समाजों के सभासद् उपस्थित थे उन्होंने पं. लेखराम का स्मरण करते हुये पूरे जोश से महर्षि दयानन्द के जय-जयकार के गगनभेदी जयकारे गुञ्जाये। मैंने अपने जीवन के ७०-७५ वर्ष आर्यसमाज के विधर्मियों विरोधियों के बड़े-छोटे शास्त्रार्थों के सहस्रों प्रसंग सुनकर, पढ़कर सुरक्षित किये परन्तु श्री ओ३म् प्रकाश जी कपड़े वाले ने जो इस शास्त्रार्थ के एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी थे उनके इस संस्मरण को बेजोड़ व रोचक पाया। आर्यसमाज के गौरवपूर्ण इतिहास का हम इसे एक गौरवपूर्ण पृष्ठ क्यों न मानें? यदि ओ३म् प्रकाश जी ने अपने सीने की ज्ञान सम्पदा इस सेवक को न सौंपी होती तो यह कोश भी लुट चुका होता।

प्रसंगवश यहाँ यह दु:खद् पीड़ा भी व्यक्त कर देने को जी करता है। श्री ओ३म् प्रकाश जी अपने समाज में श्रीयुत् धर्मपाल आर्य से बड़ा स्नेह करते थे। इनका कहा नहीं टाला करते थे। हमने धर्मपाल जी से एक बार कहा था- "मैं भी आ जाऊँगा। आप आर्यसमाज के तीन-चार इतिहास प्रेमी, सिद्धान्तप्रेमी सुयोग्य अनुभवी युवकों को बुला लें। हम सब श्रीमान् ओ३म् प्रकाश जी का साक्षात्कार लेने के लिये प्रश्न करते जायेंगे। आप हमारे ऐसे प्रश्न तथा उनके उत्तरों की रिकार्डिंग की व्यवस्था कर दें। यह आपके तथा आपके समाज के लिये कोई कठिन कार्य नहीं।"

धर्मपाल जी को मेरा सुझाव तो जँच गया परन्तु इनकी व्यस्तताओं ने इन्हें अवकाश न दिया और अनहोनी हो गई। वह रत्न समाज ने खो दिया। दोष मेरा भी कुछ तो माना ही जावेगा। मैं धर्मपाल जी की जान खाता रहता तो यह समय रहते व्यवस्था करवा देते।

वे दो शास्त्रार्थ:- सन् १९५२-५३ की सर्दियों में गाँधी मैदान में आर्यसमाज के उत्सव पर दो शास्त्रार्थ पौराणिकों से हुये। आर्यसमाज की ओर से पं० लोकनाथ जी तथा पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकर ने एक-एक शास्त्रार्थ किया। सम्भवत: उस युग के आर्यसमाजिक पत्रों में सार रूप में इनकी कुछ सामग्री मिल जावे। तब श्रोता के रूप में अपने दोनों विद्वानों के हावभाव तथा फुलझड़ियों को भूल पाना कठिन है।

यह आश्चर्य का विषय है:- स्वामी वेदानन्द जी, स्वामी विज्ञानानन्द जी दोनों हमारे तपस्वी व शिरोमणि संन्यासी थे। दोनों ही दिल्ली में रहते थे। स्वामी वेदानन्द जी एक बार बाद दोपहर समाज के वाचनालय में महात्मा आनन्द भिक्षु जी की शङ्काओं का समाधान करने स्वयं नया बांस पधारे। इस विनीत ने उनका दो घण्टे चला शङ्का-समाधान सुना था। यह समझ में नहीं आता कि इन दोनों पूज्य संन्यासियों को कभी अपने उत्सव में अथवा साप्ताहिक सत्संग में नया बांस समाज में कभी क्यों न बुलाया गया? नया बांस वालों की कोई मोड़ने वाला तो था ही नहीं।

ऐसे ही आर्यसमाज के एक महान् निर्माता स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज का नया बांस में कभी उपदेश, व्याख्यान नहीं करवाया गया। श्री महाशय कृष्ण जी दिल्ली में देश विभाजन के पश्चात् पन्द्रह वर्ष दिल्ली के सामाजिक जीवन में सक्रिय रहे। लाहौर से भी सार्वदेशिक की बैठकों में आते ही रहते थे। नया बांस में न जाने क्यों उनको कभी भी आमन्त्रित न किया गया।?

हीरालाल गाँधी की शुद्धि:- पाठक इस उपशीर्षक को पढ़कर चौंक जावेंगे कि जिज्ञासु श्री हीरालाल गाँधी

की शुद्धि की घटना को आर्यसमाज नया बांस के इतिहास में कैसे घसीट लाया। उसे तो मुम्बई आर्यसमाज ने शुद्ध कर वापिस आर्यजाति का अभिन्न अंग बनाया था। हम भी मानते हैं कि मुम्बई में उनकी शुद्धि की गई। श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री के प्रभावशाली व्याख्यानों से देश भर में इस शुद्धि की धूम मच गई परन्तु आर्यसमाज नया बांस को भी हीरालाल जी की घर वापसी और आर्यसमाज से जुड़ने की घटना का पर्याप्त श्रेय प्राप्त है।

श्री ओ३म् प्रकाश जी कपड़े वाले सुनाया करते थे कि हीरालाल मुसलमान बना तो गाँधी जी की भूल व हठी स्वभाव के कारण। उसके मुसलमान बनने पर आपने उसे गले लगाने के लिए एक तिनका भी न तोड़ा। माता कस्तूरबा रो-रोकर व्याकुल हो रही थी। मुसलमानों ने देश भर में उसके मुसलमान बनने का इतना प्रचार किया कि हिन्दुओं का मनोबल बहुत गिर गया। तब आर्यसमाज नया बांस की आधारशिला रखने वाले देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी ने नया बांस आर्यसमाज में कहा- "दिल्ली भारत की राजधानी है। यहाँ पर ही हीरालाल को अंगीकार करने का, शुद्धि का एक विराट् कार्यक्रम आयोजित करके हिन्दू समाज का मनोबल उभारा जावे।"

नया बांस समाज को भाई जी का आदेश मान्य था। वहाँ लोगों में इस कार्यक्रम के लिये अथाह उत्साह था। प्रेस ने भी इस समाचार का व्यापक प्रचार किया। सार रूप में यह है कि कहानी हीरालाल की नया बांस समाज द्वारा शुद्धि की।

हीरालाल आर्यसमाज से जुड़कर श्रद्धानन्द बलिदान भवन में रहा करता था। यह श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक तथा ला० रामगोपाल शालवाले दोनों के मुख से हमने सुना। वह अपनी माता का भक्त था। गाँधी जी का घोर विरोधी था। कई कारण वह बताता था। आर्य सत्याग्रह हैदराबाद के समय पं० नेहरू ने एक वक्तव्य दिया जो आर्यसमाज के साथ अन्याय था, मुस्लिम पोषक नीति के कारण क्रूर निजाम को खरी-खरी न कह सकते थे। आर्यसमाज ने पं० जवाहरलाल के कथन का यथोचित उत्तर प्रेस में दे दिया। हीरालाल ने अलग से उसके वक्तव्य का कड़ा उत्तर दिया। आर्य नेताओं ने उसका उत्तर प्रेस में जाने से पूर्व पढ़ा तो उसे समझाया कि पं० नेहरू इसे पढ़कर और भड़क सकता है। वह हठी स्वभाव का है। इसे प्रेस में न दिया जावे। श्री हीरालाल अपना वक्तव्य देने का दृढ़ निश्चय कर चुका था।

तब इस उलझन को सुलझाने के लिये आर्य नेताओं ने श्री देवदास गाँधी उनके ज्येष्ठ भ्राता को बुलवाया। हीरालाल अपने भाई के लिये आदरभाव रखता था और श्री देवदास जी गाँधी आर्य सत्याग्रह के औचित्य से सहमत थे। वह सार्वदेशिक सभा का सन्देश पाकर अविलम्ब बलिदान भवन पहुँच गये। उन्होंने श्री हीरालाल जी को समझाया कि हमें नीतिमत्ता से कार्य करना चाहिये। नेहरू को अपनी बात कहने दो। उत्तर आर्य नेताओं ने दे दिया है। सत्याग्रह आन्दोलन की हानि नहीं होनी चाहिये। नेहरू आपके वक्तव्य से चिढ़कर खुलकर निजाम शाही के पक्ष में बोलेगा। देवदास जी के कहने का श्री हीरालाल पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उसने आर्य सतयाग्रह में खुलकर साथ दिया। इसका कुछ श्रेय आर्यसमाज नया बांस को अवश्य देना होगा। यह समाज उसके सुख-दुःख का भागीदार बना रहा।

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी की एक घटना:- अब तो आर्य जनता भूल चुकी है कि आर्यसमाज स्थापना शताब्दी पर क्या-क्या दूरगामी परिणाम के कार्य किये गये। सार्वदेशिक सभा ने कुछ परखे हुये पुराने समाज सेवियों और विद्वानों का शताब्दी समारोह पर भक्तिभाव से श्रद्धापूर्वक सम्मान करने का निश्चय किया। आर्यसमाजें भी ऐसे व्यक्तियों के सम्मान में आगे आ सकती थीं। नया बांस समाज देश का सबसे पहला आर्यसमाज था जिसने आगे बढ़कर कहा कि कुछ आर्य पुरुषों का सम्मान करने में नया बांस समाज को भागीदार बनाया जावे। ततकाल सार्वदेशिक सभा ने इस समाज का कहा मान लिया।

शेष पृष्ठ २७ पर

दलितोद्धार की आड़ में (३)

(राजेशार्यः आट्टा पानीपत-१३२१२२, मो०: ०९९९१२९९३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! यह सत्य है कि कुछ सौ वर्ष पूर्व शिक्षा व सम्मान पर एकाधिकार जमाकर बैठे योग्य व अयोग्य लोगों के कारण हिन्दू समाज अपंग सा हो गया था और रूढ़ियों व कुरीतियों का दास बन गया था। उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राजमोहन राय, ज्योतिबा फूले, महर्षि दयानन्द आदि व उनके शिष्यों के प्रयास व बलिदान के परिणामस्वरूप बहुत सी रूढ़ियाँ आज अतीत की कहानी बन चुकी हैं। इसमें स्वतंत्रता के बाद लागू हुए संविधान व शिक्षा के प्रचार ने भी योगदान दिया है। यदि स्वार्थी राजनेता समाज में विष न घोलते, तो अब तक परिस्थितियाँ पूर्णतः बदल चुकी होतीं। हर समय पिछली बातों को याद करके रोना ठीक नहीं है, वर्तमान में जीने का प्रयास करना चाहिये। डॉ० अम्बेडकर की आड़ लेकर उनके विरोधी रहे पेरियार की विचारधारा का प्रचार समाज में वैमनस्य ही पैदा करेगा। डॉ० अम्बेडकर ने आर्यों को भारत के मूल निवासी माना है, वे संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने के समर्थक थे। उन्होंने भले ही मनुस्मृति जलाई हो, पर वे प्राचीन मनु व राम- कृष्ण आदि का सम्मान करते थे। जबकि 'जयभीम' वाले लिखते हैं- "दलित साहित्य पुनर्जन्म, भाग्य, भगवान्, धर्म, कर्म के सिद्धान्त को नकारता है और व्यक्ति को साधना, आस्था और चिन्तन के प्रति उन्मुख करता है।" (पृ० १२)

समीक्षाः- यह सत्य है कि संसार में ऐसा भी समय रहा है कि धर्म और भगवान् के नाम पर भोले लोगों का खून शोषण किया गया व अब भी किया जा रहा है पर उनका वास्तविक स्वरूप हानिकारक नहीं है। अच्छा होता दलित साहित्यकार इनके वास्तविक स्वरूप को जानकर उससे लाभ उठाते। जुकाम के कारण परेशानी होती है तो उसका इलाज करना चाहिए, नाक काटकर फैंकना ठीक नहीं है। यूँ तो देश में कई बार रुपये-पैसे भी नकली मिलते हैं और खाने-पीने की चीजें भी मिलावटी मिलती हैं, तो क्या इसी कारण रुपये-पैसे व भोजन का प्रयोग छोड़ दें? यदि पुनर्जन्म, भगवन्, धर्म, कर्म व भाग्य आदि भी नहीं हैं तो साधना किसलिये? आस्था क्यों? हिन्दू धर्म से नाराजगी है पर पुनर्जन्म को तो बौद्ध भी मानते हैं। सब कुछ नकारना तो कम्युनिस्टों व पेरियार पंथियों का सिद्धान्त है। उनसे हाथ मिलाने से पहले अम्बेडकरवादियों को डॉ० अम्बेडकर द्वारा फरवरी १९५३ में भारत-जापान सांस्कृतिक संघ के उपाध्यक्ष एम०आर० मूर्ति के सम्मान में आयोजित समारोह में बोला गया यह वचन अवश्य याद रखना चाहिए- "आने वाली पीढ़ियों को किसी एक के रास्ते पर चलना होगा। चाहे वे बुद्ध के धम्म मार्ग पर चलें या फिर समाजवाद के मार्ग पर। धम्म मार्ग ने लोकतंत्र एवं समाजवादी रचना को आगे बढ़ाया, जबकि साम्यवाद राजनैतिक उद्देश्यों के लिए मजदूरों का इस्तेमाल कर रहा है।"

डॉ० अम्बेडकर पेरियार के विचारों से भी सहमत नहीं थे क्योंकि पेरियार आर्यों (ब्राह्मण आदि हिन्दुओं) को विदेशी आक्रमणकारी मानते थे, जबकि डॉ० साहब भारत को ही आर्यों की आदि भूमि मानते थे। पेरियार संस्कृत भाषा के कट्टर विरोधी थे, जबकि डॉ० साहब संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने के पक्षधर थे। पेरियार ने दलितों के लिए अलग देश (द्रविड़िस्तान) बनाने के लिए १९४० ई० में कांचीपुरम में नक्शा जारी किया था, जबकि डॉ० साहब अखण्ड भारत के समर्थक थे। पेरियार दलितों को मुस्लिम बनने के लिए प्रोत्साहित करते थे, जबकि डॉ० साहब ने सभी प्रलोभन ठुकराकर अपने अनुयायियों को बौद्ध बनाया। पेरियार का दलितोद्धार हिन्दू ग्रन्थों व देवी-देवताओं की आलोचना तक ही सीमित था जबकि डॉ० साहब वास्तव में दलितों का उत्थान चाहते

थे व करते थे। पेरियार ने तो तिरंगे झण्डे व भारत के संविधान को भी जलाने की बात कह दी थी। राम, कृष्ण, गणेश आदि की मूर्तियाँ तोड़ना व उन्हें जलाना पेरियार के सामान्य कार्यक्रमों में शामिल था, तभी उनकी पहली बरसी (२५ दिसम्बर १९७४) पर उनके अनुयायियों ने चेन्नई में राम, लक्ष्मण व सीता के पुतले जलाये थे। अब जाने-अनजाने में अम्बेडकरवारियों पर पेरियार हावी होता जा रहा है, जो अम्बेडकर दिखाकर मार्क्स-लेनिन बेच रहा है। भारत में कम्युनिस्टों का उद्देश्य राष्ट्रवाद और हिन्दुत्त्व का विरोध करना ही है और उसी परम्परा का पालन करते हुए डॉ० सोहनलाल सुमनाक्षर ने दलित साहित्यकारों को निर्देश देते हुए लिखा है- "इसी तरह हिन्दुस्तान, हिन्दू धर्म, हिन्दू शास्त्र, जगद्‌गुरु और हिन्दू देवी-देवताओं के नामों का जितना उल्लेख कम किया जाए अच्छा है।..... तथाकथित उच्च वर्ग के साथ पूर्णत: नकारात्मक रुख हानिकारक है। दलितों के उत्थान में सहयोग की सीमा तक उनके साथ मध्यम मार्ग अपनाना लाभकारी है।" (पृ० १५)

समीक्षा:- यद्यपि हिन्दू नाम विदेशियों द्वारा दिया गया है, पर बहुत लम्बे समय से प्रचलन में रहने के कारण यह रूढ़ हो गया है, प्राचीन नाम तो वैदिक ही है। पर डॉ० अम्बेडकर परिष्कृत हिन्दू राष्ट्रवाद के व्याख्याता थे। उन्होंने अपनी पुस्तकों में हिन्दू शब्द का प्रयोग राष्ट्रीयता के लिए कई बार किया है। वे राष्ट्रोत्थान, शक्तिमान् तथा एकता के लिए हिन्दू समाज को सर्वोपरि स्थान देने के प्रबल समर्थक थे। ११ जनवरी १९५० को मुम्बई में उन्होंने कहा- "अब तक हम शत्रुता के आधार पर राजनीति करते थे। मुझे लगता है कि अब तक अस्पृश्य वर्ग के सभी नेता कुछ संकुचित दृष्टिकोण से देखते रहे और बरतते भी रहे। कुछ मात्रा में यह दोष मुझमें भी था। हमें लगता है कि हिन्दुओं के हाथ में सत्ता आने पर हमारा क्या होगा? लेकिन अब हमें अपनी सोच बदलनी है। अब तक हम अपने वर्ग विशेष के हितों की ही चिन्ता किया करते थे। आगे भी उसे करना है किन्तु साथ ही अब हमें देश की स्वतंत्रता की रक्षा करने की भी चिन्ता करनी है। अत: यदि देश पुन: पराधीन हुआ तो यह हम सभी का दुर्भाग्य होगा। देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना सभी का अपना परम कर्त्तव्य है- ऐसा मानना चाहिए।" (कृष्ण गोपाल एवं श्री प्रकाश)

सोचिये, डॉ० अम्बेडकर पर एकाधिकार जमाने वाले ये दलित साहित्यकार अलगाववाद का पोषण कर क्या उनके विचारों की हत्या नहीं कर रहे हैं? इन्हें पता है कि गड्ढे में गिरे निर्बल व्यक्ति को कोई बाहर खड़ा व्यक्ति ही सहारा देकर निकाल सकता है। अत: ये उसी सीमा तक उच्च वर्ग के साथ मित्रता निभाना चाहते हैं, जहाँ तक उनका सहयोग लेना है। इसे ये मध्यम मार्ग (न मित्रता न द्वेष) कहते हैं। इनके इस दिशा निर्देशन का परिणाम यह हुआ कि राजनैतिक आधार पाकर इनकी भीम सेना हिन्दू-विद्वेष में इनसे भी आगे बढ़ गई है। अयोध्या के राम मन्दिर मामले पर बोलते हुए भीम सेना कानपुर के राष्ट्रीय अध्यक्ष राजेश मान ने बाबरी मस्जिद का पक्ष लेते हुए कहा कि वहाँ मस्जिद होने के ही प्रमाण हैं, अत: मस्जिद वहीं बनेगी। हम मन्दिर बनाने के सुप्रीम कोर्ट के फैसले को भी नहीं मानेंगे।" पाकिस्तान से पीड़ित होकर भारत में शरण लेने वाले हिन्दुओं (जिनमें मुख्यत: दलित हैं) को भारत की नागरिकता देने के लिए भारत सरकार ने ११ दिसम्बर २०१९ को सीएए बिल पास किया तो भीमसेना के मुखिया चन्द्रशेखर उर्फ रावण ने मस्जिद में जाकर इसके विरोध में मुसलमानों को भड़काया। सोचिये, ये कैसे दलित हितैषी हैं?

लेखक भारत के स्वर्णिम अतीत को मानता है, पर उसे केवल दलितों की सम्पत्ति कहता है। इस दोहरी उलझन से लेखक स्वयं भी नहीं निकल पाया, फिर दूसरों को क्या मार्ग दिखाएगा! लिखा है- "सिन्धु घाटी की सभ्यता दलितों के स्वर्णिम, गौरवशाली इतिहास का दस्तावेज है।..... यह आदि धर्म बुलन्दियों की सभ्यता थी जिसके आराध्य देव थे- महादेव शिव और मातृशक्ति जगदम्बा माँ काली। उस समय का भारत सोने की

चिड़िया कहा जाता था।... साधना, ध्यान और तपस्या के आधार पर यहाँ के लोगों की ब्राह्मण्ड तक पहुँच थी। अपने इस शान्तिपूर्ण वैभवशाली समाज में रचे गये उपनिषद् जैसे ग्रन्थ हमारे पूर्वजों के अपार और असीम ज्ञान के द्योतक हैं।" (पृ. १६)

समीक्षा:- तथ्यों के आधार पर सिन्धु घाटी की सभ्यता आर्यों की सभ्यता सिद्ध हो चुकी है। द्रविड़ भी आर्य ही थे, यह डी०एन०ए० के आधार पर वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है। शिव और काली ये वर्तमान आर्यों (हिन्दुओं) के देवता हैं, जो वैदिक और यूनानी आदि विदेशियों के मिश्रण से इस रूप को प्राप्त हुए हैं। देश सोने की चिड़िया तब कहलाता था, जब तक यहाँ मुस्लिम आक्रमणकारी नहीं आये थे। गुप्त काल (३४४ ई० - ५४३ ई०) को सभी इतिहासकार भारतीय सभ्यता का स्वर्ण युग कहते हैं। उसी काल में भारत यात्रा पर आया चीनी यात्री फाहियान लिखता है- "यहाँ (मथुरा) से दक्षिण मध्य देश कहलाता है। यहाँ शीत और उष्ण सम है। प्रजा प्रभूत और सुखी है। व्यवहार की लिखा-पढ़ी और पंच पंचायत कुछ नहीं है। लोग राजा की भूमि जोतते हैं और उपज का अंश देते हैं। जहाँ चाहे जाएं, जहाँ चाहें रहें। राजा न प्राण दंड देता है और न शारीरिक दंड देता है। अपराधी को अवस्थानुसार उत्तम साहस व मध्यम साहस का अर्थ दण्ड दिया जाता है। बार-बार दस्यु कर्म (चोरी, हत्या आदि दुष्कर्म) करने पर दक्षिण (दायाँ) करच्छेद किया जाता है। राजा के प्रतिहार और सहचर वेतन भोगी हैं। सारे देश में कोई अधिवासी न जीव हिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन-प्याज खाता है। सिवाय चाण्डाल के। दस्यु को चाण्डाल कहते हैं। वे नगर के बाहर रहते हैं और नगर में जब पैठते हैं तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते चलते हैं कि लोग जान जाएं और बचाकर चलें, कहीं उनसे छू न जाएँ। जनपद में सूअर और मुर्गी नहीं पालते, न जीवित पशु बेचते हैं, न कहीं सूनागार (कसाई घर) और मद्य की दुकानें हैं। क्रय-विक्रय में कौड़ियों का व्यवहार है। केवल चाण्डाल मछली मारते, मृगया करते और मांस बेचते हैं।" (चीनी यात्री फाहियान का यात्रा विवरण, पृ० ६४)

यह वर्णन चौथी-पाँचवीं शताब्दी का है और बौद्ध यात्री कह रहा है कि हिन्दू राज्य में सब प्रजा सुखी थी, किसी पर अत्याचार नहीं होता था, जबकि सिन्धु सभ्यता को द्रविड़ मानने वाले कहते हैं कि आर्यों ने उन दलितों पर आक्रमण कर उन्हें अपना दास बनाया व उन पर अत्याचार किये। वेद आर्यों के ग्रन्थ हैं, उपनिषद् वेदों पर आधारित हैं। अत: वे भी आर्यों के ही ग्रन्थ हैं। इन्हें अपने पूर्वजों के अपार ज्ञान के द्योतक बताकर लेखक ने सत्य प्रकट कर दिया है कि वे (दलित) भी आर्यों के ही अंग हैं। पर घृणा ने बुद्धि पर ऐसा ताला लगाया है कि अगले पृष्ठों (२५-२६) में इन्हीं उपनिषदों को भी मनु मानसिकता में आकण्ठ डूबे हुए लिख दिया। अर्थात् वे दलितों के नहीं अपितु उनके शत्रु आर्यों के ग्रन्थ बन गये। यही नहीं, पंत, निराला, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, डॉ० रामकुमार वर्मा आदि के साहित्य को भी उसी श्रेणी में रख दिया। इसलिए उन सबको परे फैंककर दलित साहित्य लिखने की बात कही हैं-

"आज दलित साहित्यकारों की लेखनी ने शंबूक ऋषि को वीरनायक और पुरुषोत्तम राम को उनका हत्यारा घोषित कर दिया, अनार्य राजा रावण को पूजनीय बना दिया है। इसी तरह एकलव्य को दलितों का वीर नायक, कर्ण को महापुरुष और गुरु द्रोणाचार्य को राष्ट्रद्रोही साबित कर दिया है। आज 'झलकारी बाई' ही असली झाँसी की रानी, मातादीन वाल्मीकि ही १८५७ का असली नायक और बाबा साहब डॉ० बी०आर० अम्बेडकर ही महान् संविधान निर्माता सिद्ध हो चुके हैं।" (पृ० २०)

सीमक्षा:- चेन्नई में पेरियार की पहली बरसी पर 'रावणलीला' कार्यक्रम में जी०एल० साहू ने कहा था- "अगर राम मुझे कहीं मिल जाए तो मैं जूते लगाना नहीं भूलूँगा।...पेरियार ने सन्देश दिया है कि राम भगवान् नहीं, राम एक हत्यारा था।...

और लेखक वही शब्दावली तो प्रयोग कर रहा है। क्या यह सीधे अम्बेडकर की आड़ में पेरियार **नहीं परोसा** जा रहा है? इससे स्पष्ट हो रहा है कि **द्विज (सवर्ण)** चाहे कितना भी उदार क्यों न हो, जन्मना दलित न होने के कारण इनकी दृष्टि में सम्माननीय नहीं **है। मुंशी प्रेमचन्द** ने जीवन भर वास्तविक दलितों की पीड़ा लिखी, पर इन्हें वे भी पसन्द नहीं आये, क्योंकि ये तो कल्पना का मनभावन महल खड़ा करना चाहते हैं। तभी तो लिखा– "कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, निराला, पंत, सोहनलाल द्विवेदी, प्रेमचन्द्र आदि ने दलितों पर रचनायें की हैं, दलित साहित्य लिखा है। इसे हम सरासर झूठ मानते हैं।. ...उसे हम हमदर्दी से लिखा साहित्य कह सकते हैं, दलित साहित्य नहीं।"

शम्बूक वध की कथा रामायण उत्तरकाण्ड में लिखी हुई है, जिसे आधुनिक शोध के आधार पर प्रक्षिप्त (बाद में किसी अन्य द्वारा जोड़ा गया) सिद्ध किया जा चुका है। आर्य समाज द्वारा प्रकाशित किसी भी रामायण में उत्तरकाण्ड नहीं है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना से १९६१ ई० में प्रकाशित (मूल तेलगू) रंगनाथ रामायण, अहमदबख्श थानेसरी कृत व हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ द्वारा प्रकाशित रामायण में उत्तरकाण्ड नहीं है। रामायण वनपर्व में दो स्थानों पर रामायण की संक्षिप्त कथा लिखी है, वहाँ उत्तरकाण्ड की किसी भी घटना का वर्णन नहीं है। अर्थात् उत्तरकाण्ड इतहिास नहीं, अपितु बाद की कल्पना है। फिर भी यदि कोई उत्तरकाण्ड को प्रमाण मानकर राम को हत्यारा सिद्ध करना चाहे तो उसे यह भी मानना पड़ेगा कि बाली ने रावण को अपनी काँख में दबाकर उड़ते हुए सभी समुद्रों की सैर की थी; हनुमान ने बचपन में सूर्य निगल लिया था; रावण ने देवताओं की कन्याओं का भी अपहरण किया था; उसने रम्भा के साथ बलात्कार किया था; रावण को मारने के लिए विष्णु ने अवतार लिया था; सीता पूर्वजन्म में रावण से तिरस्कृत हुई ब्रह्मर्षि की कन्या वेदवती थी; तो रावण को शाप देकर **अग्नि में** प्रवेश कर गई थी। क्योंकि यह सब भी **उत्तरकाण्ड** में लिखा हुआ है। वहाँ (सर्ग ७६) यह भी लिखा **है कि** शम्बूक वध के बाद इन्द्र आदि देवताओं ने **राम पर फूलों** की वर्षा की और शम्बूक की तपस्या के कारण मरने वाला ब्राह्मण पुत्र फिर जीवित हो गया। यदि लेखक इन सब बातों को मानता हो तो हमें राम को हत्यारा मानने में कोई आपत्ति नहीं है पर लेखक को भी रावण को इसी रूप में मानना होगा।

महाभारत (सभा प० ४४-२१) के अनुसार एकलव्य महारथी था और राजसूय यज्ञ के अवसर पर सम्मानित अतिथि के रूप में युधिष्ठिर की सभा में उपस्थित था, अछूत दलित के रूप में नहीं। शिशुपाल ने भी उसे अग्रपूजा के अधिकारी के रूप में प्रस्तुत किया था। वह महाभारत के युद्ध में लड़ा था। यदि द्रोणाचार्य ने उसका अंगूठा काटवाया भी हो तो अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को दिये वचन (तुम्हारे समान दूसरा धर्नुधर नहीं होगा) को निभाने के लिए ही, दलित (शूद्र) होने के कारण नहीं और गुरुदक्षिणा देते हुए एकलव्य तो बहुत प्रसन्न था। इसी घटना ने तो उसे इतिहास में अमर बना दिया। वह दलित साहित्यकारों के कारण दलितों का वीर नायक नहीं बना अपितु सैकड़ों हजारों वर्षों से हिन्दू लोग एकलव्य को गुरुभक्त शिरोमणि का सम्मान देते रहे हैं और दे रहे हैं। किसी हिन्दू साहित्यकार ने उसे दलित अछूत व हेय नहीं लिखा। फिर दलित लेखक किस बात का श्रेय लेकर विद्वेष पैदा करना चाहते हैं?

कर्ण महाभारत का मुख्य पात्र था। दुर्योधन ने उसी के पराक्रम के कारण पाण्डवों से वैर ठाना था। महाभारतकार ने उसे भीष्म, द्रोण के समान सम्मान दिया है। कौरव-पाण्डवों के नाम पर महाभारत में कोई पर्व (अध्याय) नहीं है पर 'कर्ण पर्व' है। कर्ण सूर्य द्वारा राजकुमारी कुन्ती को दिया हुआ वरदान था तो वह देवपुत्र था; जिसे किसी भी अवस्था में दलित नहीं कह सकते। यदि सूतपुत्र था तो भी वह शूद्र नहीं था क्योंकि महाभारत आदि पर्व अध्याय १३१, श्लोक ११ के अनुसार राधानन्दन

सूतपुत्र कर्ण भी वृष्णिवंशी अन्धकवंशी, कौरव तथा पाण्डवों के साथ आचार्य द्रोण के पास शिक्षा ग्रहण करता था। उसी समय से वह दुर्योधन का सहारा लेकर पाण्डवों का अपमान किया करता था और अर्जुन से लाग-डाँट रखता था। वहीं से वह दुर्योधन का मित्र बना। शान्तिपर्व के अनुसार कर्ण ने जरासन्ध को पराजित कर अंग देश का राज्य पाया था। आदि पर्व के अनुसार उसे दुर्योधन ने अंग देश का राजा बनाया था। पर वास्तविकता यह है कि उसने जीवन भर राज्य का भोग किया है। उसकी दानवीरता की कहानियाँ महाभारत में लिखी हुई हैं व उनके अतिरिक्त भी समाज में प्रचलित हैं। कुरुक्षेत्र में कर्ण का टीला व करनाल जैसा प्रसिद्ध नगर उसी कर्ण के नाम पर बताये जाते हैं, फिर कर्ण उपेक्षित कहाँ रहा?

समाज में जब जन्मना वर्ण व्यवस्था चल पड़ी होगी, (८वीं शताब्दी) तो संस्कृत के महाकवि भट्टनारायण ने कर्ण के मुख से कहलवाया- "मैं सूत हूँ या सूत पुत्र हूँ अथवा जो कोई भी हूँ। जन्म देना विधाता के हाथ में है, मेरे वश में मेरा पौरुष (पराक्रम) है।"(वेणीसंहार ३-३७)

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म, मदायत्तं तु पौरुषम्॥

हिन्दी के महोकवि दिनकर जी ने कर्ण के व्यक्तित्त्व को उभारते हुए 'रश्मि रथी' जैसा काव्य लिखा है। आर्यसमाज के भजनोपदेशक चौ० पृथ्वी सिंह बेधड़क ने प्रचलित मान्यता के अनुसार कर्ण की अन्तिम समय की दानवीरता दर्शाते हुए जो इतिहास लिखा था, उसे आज की पीढ़ी भी गा रही है। फिर कर्ण जैसा महान् योद्धा दलित साहित्यकारों की लेखनी का मोहताज कहाँ रहा?

झलकारी बाई की वीरता व देशभक्ति का हम सम्मान करते हैं पर उसे झाँसी की रानी कैसे बनाया जा सकता है? झाँसी के राजा गंगाधर राव की पत्नी तो वीरांगना लक्ष्मीबाई ही रहेगी। झलकारी ने जो वीरता दिखाई और अपना बलिदान देकर अमर हुई उसका आधार भी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ही थी। वह रानी की महिला सेना की सेनापति थी। रानी का रूप बनाकर वह जिस वीरता से लड़ी, उससे अंग्रेज परेशान व हैरान हो गये थे। उस वीरांगना की वीरता का वर्णन वृन्दावन लाल वर्मा जी ने १९४६ ई० में प्रकाशित 'झाँसी की रानी' में किया है। झलकारी बाई रानी पर श्रद्धा के कारण बिना किसी नाम व इनाम के लड़ी। रानी या झलकारी में ब्राह्मण-दलित जैसा कोई भेदभाव नहीं था। दलित साहित्यकार अपनी मानसिकता उन महान् विभूतियों पर न थोपें। मातादीन भंगी के माध्यम से कारतूसों में चर्बी होने का रहस्य जानकर यदि मंगलपाण्डे ने अंग्रेज अफसरों को मारा और अंग्रेजों ने फाँसी दे दी तो मातादीन का स्थान मंगल पाण्डे से ऊँचा कैसे हो गया? फिर तो रावण वध का श्रेय भी कैकेयी या मंथरा को देना चाहिए क्योंकि उन्होंने ही राम को वन भिजवाया था, जहाँ सीता-हरण हुआ और रावण माया गया।

डॉ० अम्बेडकर को सारा देश संविधान निर्माता का सम्मान दे रहा है। वैसे भी हमारे संविधान में अंग्रेंजों द्वारा बनाया गया १९३५ का एक्ट ज्यों का त्यों है और जिन देशों के संविधानों से हमने सामग्री ले रखी है, वे लगभग अंग्रेजों के अधीन थे। अत: वे कानून भी अंग्रेजों के बनाये हुए ही थे। इस पर भी नेहरू जी ने प्रारूप समिति पर दबाव डालकर संविधान में बहुत कुछ ऐसा जुड़वा दिया था, जिसे डॉ० अम्बेडकर लिखना नहीं चाहते थे। बाद में ३१ अक्टूबर १९५१ को उन्होंने नेहरू जी की कैबिनेट से इस्तीफा दे दिया। २ सितम्बर १९५३ को राज्यसभा में आन्ध्र प्रदेश के एक विधेयक पर विपक्षी सांसद के नाते बहस करते हुए डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि लोग मुझसे कहते रहते हैं कि ओह! तुम संविधान के निर्माता हो। मेरा उत्तर है कि मैं उस समय भाड़े का टट्टू था। मुझे जो कुछ करने को कहा गया, वह मैंने अपनी इच्छा के विरुद्ध जाकर किया।" तत्कालीन गृहमन्त्री कैलाशनाथ काटजू का उत्तर देते हुए उन्होंने क्रोध भरे स्वर में कहा- "अध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र मुझे कहते हैं कि मैंने संविधान को बनाया लेकिन मैं यह करने को बिल्कुल तैयार हूँ कि इसे जलाने वालों में मैं पहला व्यक्ति हूँगा। मैं इसे बिल्कुल नहीं चाहता। यह किसी के भी हित में नहीं

है।" (धनंजय कीर, डॉ. अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन, मुंबई १९९४, पृ. ४४९-५०)

सोचिये, क्या हम डॉ० अम्बेडकर को ऐसे ही संविधान का निर्माता सिद्ध कर प्रसन्न हो रहे हैं? माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व में कश्मीर से जिस धारा ३७० को हटाया गया है, वह भी डॉ० अम्बेडकर द्वारा निर्मित संविधान में थी। तब अम्बेडकरवादियों को अड़ जाना चाहिए था कि हम बाबा साहब की लेखनी से निकले संविधान के एक भी शब्द को नहीं हटाने देंगे। यही क्यों, अब तक संविधान में हो चुके लगभग एक सौ संशोधनों के समय भी विरोध करना चाहिए था। सोचिये, क्या यह अब भी वही संविधान है, जो डॉ० अम्बेडकर ने बनाया था। आज यदि डॉ० अम्बेडकर की जय बोलने वाले लोग उनकी विचारधारा के विपरीत आर्यों को विदेशी आक्रमणकारी बताकर राम-कृष्ण को अपमानित करें तो इसमें डॉ० अम्बेडकर का क्या अपराध है जो उनकी प्रतिमा तोड़ी जाए! तो फिर किसी समय में मनु के तथाकथित भक्तों ने मनु की कर्मणा वर्ण व्यवस्था के विपरीत श्लोक बनाकर शूद्रों के प्रति दुर्व्यव्यवहार किया हो तो निरपराध मनु को गाली क्यों दी जाती है? यदि समय की आवश्यकता अनुसार डॉ० अम्बेडकर के संविधान का संशोधन स्वीकार्य है तो मनुस्मृति का संशोधित स्वरूप स्वीकार क्यों नहीं? एक को जलाना दण्डनीय अपराध है तो दूसरे को जलाना किसी का अधिकार क्यों? सोचिये, जिन हिन्दुओं में अपने धर्मग्रन्थ जलाने वालों के प्रति सिक्ख या मुसलमानों की तरह कोई उत्तेजना पैदा नहीं हुई, उन्होंने उसके आदेशों का पालन भी क्या किया होगा? रावण, दुर्योधन आदि का गलत इतिहास लिखने का आरोप लगाने वाले दलित साहित्यकारों को यह भी विचारना चाहिए कि शूद्रों (अधिकतर बौद्ध बने) के प्रति दुर्व्यवहार कराने वाले ग्रन्थ यदि हिन्दू पण्डितों ने रचे तो हिन्दुओं के देवताओं, अवतारों (इन्द्र, विष्णु, शिव, कृष्ण आदि) व ऋषियों को दुराचारी बनाने वाले ग्रन्थ किसने लिखे होंगे, जिनमें वेद विरोधी नास्तिक बुद्ध को अवतार बनाया और अन्यों की तरह उस पर कोई कलंक नहीं लगाया! ❑❑

पृष्ठ २१ का शेष

जिन पूज्य पुरुषों का सम्मान किय गया उनमें से कुछ एक के नाम हमें आज पर्यन्त याद हैं यथा ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध प्रो० रामसिंह जी, पूजनीय पं० देवप्रकाश जी, ज्ञानी पिण्डी जी आदि। पाठकों को यहाँ यह बताना लाभप्रद होगा कि लाला रामगोपाल शालवाले जी को आर्यसमाज में खींचने वाले और वैदिक धर्म के रंग में रंगने वाले ज्ञानी पिण्डी दास जी तथा पण्डित देवप्रकाश जी ही थे।

आर्यसमाज नया बांस ने सार्वदेशिक सभा से अनुरोध किया कि राजेन्द्र 'जिज्ञासु', आचार्य सत्यप्रिय जी शास्त्री आदि कुछ महानुभावों का सम्मान यह समाज करेगा। आर्यसमाज के युवा सेवकों में से सम्मानित होने वाले हमीं दो थे। इस विनीत का सम्मान मुख्य रूप से ऋषि दयानन्द के विषपान-अमर बलिदान की घटना को झुठलाने का षड्यन्त्र करने वाले श्री राम शर्मा को धूल चटाने के लिये किया गया। जब आर्यसमाज नया बांस का नाम वेदी से इस कार्यक्रम में लिया गया तब कई समाजों और व्यक्तियों ने तत्काल ऐसा ही अनुरोध किया जो उस घड़ी स्वीकार न किया गया। आर्यसमाज नया बांस के लोग तो अब यह घटना भूल गये परन्तु हम उस दृश्य को नहीं भूल सकते। एक स्वयंसेवक थे जो मुझे नहीं जानता था, मेरा नाम पुकारे जाने पर मुझे ऊपर जाने नहीं दे रहा था। "किस से क्या काम है?" उसे उत्तर दिया- "मुझे कोई काम नहीं। लाला रामगोपाल शालवाले जी को मुझसे काम है। वह सुनो! मेरा नाम पुकार-पुकार कर बुला रहे हैं।" तब उसने इस विनीत को ऊपर वेदी पर जाने दिया।

स्वामी विज्ञानानन्द जी, पं. नरेन्द्र जी हैदराबाद जैसे कई विभूतियों ने नाम पुकारे जाने पर ऊपर जाकर सम्मान स्वीकार न किया। उन विरक्तों की शान ही निराली थी। (क्रमशः)

❑❑

Patrika PG Rajeev Folder_530x664 job Farma Sig-1 A Reverse Black

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/११/२०१६
भार- ४० ग्राम

फरवरी 2020

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-६६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• उपहार संस्करण	मुद्रित मूल्य 1100 रु.	प्रचारार्थ 750 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30, 8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट Ph. :011-43781191, 09650522778
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6 E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.............................
ग्राम.............................
डा0.............................
जिला.............................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।